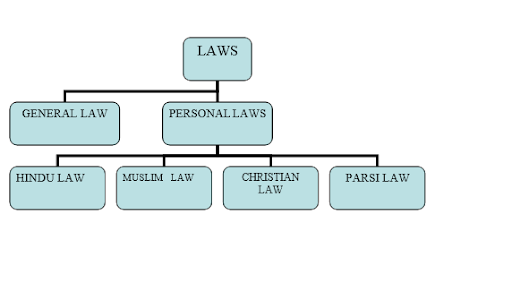
**MUSLIM LAW मुस्लिम विधि**

****

**SOURCES OF MUSLIM LAW मुस्लिम विधि के स्रोत-**

A) PRIMARY SOURCES  ( प्राथमिक स्रोत )

B) SECONDARY SOURCES  ( द्वितीयक स्रोत )

**A) PRIMARY SOURCES  ( प्राथमिक स्रोत )➡**

1) कुरान ( Quran )

2) हदीस (Traditions of Prophet )

3) इज्मा ( Consensus Opinion of The Jurists )

4) कयास (Analogical Deduction )

1) कुरान ( Quran ) ➡

📌 यह मुस्लिम विधि का पहला और मुस्लिम समुदाय का पवित्र ग्रंथ है ।

📌कुरान को Book of God भी कहा जाता है।

📌मुस्लिम की यह मान्यता है कि मोहम्मद पैगंबर को ईश्वर से दैवीय संकेत प्राप्त होते थे।

📌उन्हें पहला संकेत 609 ईसवी में प्राप्त हुआ।

📌इसके बाद समय-समय पर 632 ईस्वी तक जीवनपर्यंत उन्हें देवी संदेश प्राप्त होते रहे।

📌मोहम्मद साहब पढ़े लिखे नहीं थे उन्हें जो संकेत प्राप्त होते थे वह अपने शिष्य को बताते और उनके शिष्य इसे लिपिबद्ध करते गए।

📌मोहम्मद साहब के मृत्यु के बाद सारे दैवीय संदेशों को एकत्र किया गया तथा इनका संकलन करके एक व्यवस्थित पुस्तक प्रदान की गई इसे ही कुरान कहा जाता है।

📌कुरान धर्म कानून तथा नैतिकता का सम्मिश्रण है।

📌पुरे कुरान को विधि का स्रोत नहीं माना जाता है, क्योंकि कुरान की केवल 200 आयतें ही विधि से संबंधित है।

2) हदीस (Traditions of Prophet ) ➡

📌 पैगंबर की परंपराओं को सुन्ना (हदीस) कहा जाता है।

📌पैगंबर मोहम्मद साहब द्वारा बिना दैवीय संकेतों के सामान्य मनुष्य के रूप में, जो कुछ भी कहा या किया गया उन्हें  सुन्ना (हदीस) कहा गया, और यह सब पैगंबर के परंपराओं के अंतर्गत आते हैं तथा इसमें पैगंबर का मौन समर्थन भी आता है।

📌सामान्यता हदीस कानून का ऐसा विवरण है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी समाज में प्रचलित होता रहा।

📌काफी समय तक ना तो इसे लिपिबद्ध किया गया और ना ही इससे सुव्यवस्थित रखा गया।

📌लेकिन "अश मलिक" की पुस्तक "मुक्ता", "अबु हनबल" की पुस्तक "मसदन" तथा "इमाम मुस्लिम" की पुस्तक "शाही मुस्लिम" इत्यादि में विद्वानों ने इन परंपराओं को एकत्रित किया है।

📎 हदीस को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है-

a) अहादिस-ए-मुतवातिर (Universal Traditions)

b) अहादिस-ए मशहूर (Popular Traditions)

c) अहादिस-ए-अहद (Isolated Traditions)

3) इज़्मा ( Consensus Opinion of The Jurists ) ➡

📌 किसी नई समस्या के लिए कुरान एवं हदीस में कोई नियम नहीं होने पर, ज्यूरिस्ट के मतैक्य निर्णय द्वारा नया कानून प्राप्त कर लिया जाता था। इस प्रकार का मतैक्य निर्णय इज़्मा कहलाया।

📎 इज़्मा तीन प्रकार का होता है -

a)सहयोगियों का इज़्मा।

b)न्यायाधीशों का इज़्मा।

c)जनसाधारण का इज़्मा।

4) कयास (Analogical Deduction ) ➡

📌 किसी नवीन समस्या से संबंधित नियम प्राप्त करने के लिए कुरान तथा हदीस में उसी प्रकार की समस्या से संदर्भित नियम को, सीधे कुरान या हदीस के मूल पाठ से ही निगमित कर लिया जाता था, इसे ही कयास कहते हैं।

📌लेकिन कयास द्वारा नए नियमों का प्रतिपादन नहीं होता है

✒✒✒✒✒✒✒✒✒✒✒✒✒✒✒

**B) SECONDARYSOURCES  ( द्वितीयक स्रोत )➡**

1) Customs ( रिवाज )

2) Judicial Decision ( न्यायिक निर्णय )

3) Legislation ( विधान )

1) Customs ( रिवाज )➡

📌 रिवाज को मुस्लिम विधि के स्रोत के रूप में कभी मान्यता नहीं दी गई केवल  Supplementary के रूप में उसका कभी-कभी उल्लेख पाया जाता है।

📌अब्दुल हुसैन वर्सेस सोना डेरो -

इस वाद में प्रिवी कौंसिल का कहना था कि 'किसी मूल ग्रंथ के लिखित कानून की तुलना में एक प्राचीन तथा अपरिवर्तनीय रिवाज को वरीयता दी जाएगी'।

2) Judicial Decision ( न्यायिक निर्णय )➡

📌इसमें सुप्रीम कोर्ट प्रिवी कौंसिल और भारत के हाईकोर्ट के विनिश्चय आते हैं

📌 किसी वरिष्ठ न्यायालय का निर्णय इसके अधीनस्थ सभी न्यायालयों के लिए अनिवार्यतः मान्य होता है, इसे पूर्ण निर्णय अर्थात नजीर का सिद्धांत कहते हैं।

3) Legislation ( विधान )➡

📌विधान का अर्थ होता है विधान मंडल द्वारा कानून का निर्माण करना।

📌मुस्लिम समुदाय के संबंध में कुछ एक्ट बनाए गए हैं

✒ Muslim waqf validating Act (1913)

✒Child marriage restraint act (1929)

✒Muslim personal law shariat application act (1937)

✒Dissolution of Muslim Marriage Act (1939)

✒Muslim women Act (1986)

 वह हर समाज धर्म इत्यादि की आवश्यकता है। मुस्लिम विधि में भी विवाह जिसे निकाह कहा गया है, इसकी अवधारणा रखी गयी है। दांपत्य जीवन जीने के लिए विवाह की अनिवार्यता पर प्रत्येक समाज और व्यवस्था पर बल दिया गया है। इसी प्रकार से मुस्लिम विधि में भी विवाह पर बल दिया गया है। 'पैगंबर साहब ने हदीस में बताया है कि विवाह निकाह आधा ईमान होता है। कोई भी मोमिन तब तक मुकम्मल नहीं होता जब तक वह निकाह नहीं करता।'अनेक मुस्लिम विधिवेत्ताओं ने और भारत के न्यायालय ने विवाह (निकाह) की परिभाषाओं को पेश किया है तथा समय-समय पर मुस्लिम विवाह में निकाह की परिभाषाएं निकलकर सामने आयी हैं। कुछ मुस्लिम विधिवेत्ताओं ने मुस्लिम विवाह को केवल संविदा करार दिया है और कुछ विधिवेत्ताओं ने संविदा के साथ संस्कार भी कहा है, परंतु यदि वास्तविकता से देखा जाए तो मुस्लिम विवाह केवल एक संविदा मात्र है, क्योंकि निकाह के समय अनुष्ठान किए जाते समय किसी धार्मिक कर्मकांड की कोई आवश्यकता नहीं है। जिरह की इस्लाम धर्म के प्रारंभ से पूर्व असीमित/ बहुपत्नीत्व की प्रथा थी।

    इस्लाम के अंतर्गत क्रमिक सुधार के रूप में बहुपत्नीत्व को 4 पत्नी तक सीमित कर दिया गया। अरब में इस्लाम धर्म से पहले स्त्री वासना तृप्ति की वस्तु और पति की संपत्ति मानी जाती थी। इस्लाम ने पहली बार स्त्री को विवाह में सहमति का अधिकार दिया। उस समय समाज में अजीब तरह के विवाह प्रचलित हुआ करते थे। पैगंबर ने अरब समाज की बहुत सी कुर्तियां दूर की हैं तथा स्त्री सहमति विवाह के लिए आवश्यक कर दिया।: संविधान सभा की एकमात्र मुस्लिम महिला बेगम ऐज़ाज़ रसूल के भाषण के अंश मुस्लिम विवाह की प्रकृति मुस्लिम विवाह की प्रकृति के विषय में विभिन्न विचार हैं। कुछ विधिशास्त्रियों के अनुसार मुस्लिम विवाह पूर्णरूपेण एक सिविल संविदा है जबकि कुछ लोगों ने विवाह को एक धार्मिक संस्कार की प्रकृति जैसा कहा है। विवाह में संविदा जैसा ही प्रस्ताव होता है, उसकी स्वीकृति होती है तथा इसका प्रतिफल **'मेहर'** को माना जा सकता है जो स्त्री को पुरुष द्वारा दिया जाता है। इसकी प्रकृति से यह मालूम होता है कि यह विवाह एक सिविल संविदा है जिसे तलाक के माध्यम से किसी भी समय खत्म किया जा सकता है।इस मामले में एक महत्वपूर्ण वाद है

जिसे **अब्दुल कादिर बनाम सलीमा** के नाम से जाना जाता है। यह 1946 का मामला है, इस मामले में न्यायाधीश महमूद और न्यायाधीश मित्तर ने सबरुन्नंनिशा के वाद में मुस्लिम विवाह को संविदात्मक दायित्व के रूप में अभिनिर्धारित किया है।

**अनीशा बेगम बनाम मोहम्मद मुस्तफा** के मामले में मुख्य न्यायाधीश शाह सुलेमान ने संतुलित दृष्टिकोण अपनाया और मुस्लिम विवाह को एक सिविल संविदा के साथ धार्मिक संस्कार भी करार दिया। कुरान शरीफ विभिन्न हदीसो से यह मालूम होता है कि मुस्लिम विवाह को केवल संविदा नहीं माना जा सकता, क्योंकि इस्लाम धर्म में निकाह करना भले ही आवश्यक ना हो परंतु पैगंबर ने विवाह करने पर अधिक बल दिया है और मुसलमानों को यह संदेश दिया है कि वह बालिग होने पर फौरन विवाह कर लें जिससे विचार से बचा जा सके। परंतु इस्लाम धर्म में यदि व्यक्ति विवाह करने के काबिल नहीं है तो उसको विवाह करने से रोका भी गया है। आज मुस्लिम विवाह संविदा और संस्कार भी है और यह संस्कार केवल योग्य मुसलमानों के लिए है। यह विवाह संविदा और संस्कार का अद्भुत संयोजन है। मुस्लिम विवाह में स्त्री का अस्तित्व कायम रहता है। मुस्लिम विधि के अनुसार कोई स्त्री विवाह द्वारा अपने अस्तित्व को पति के अस्तित्व में नहीं मिला देती। वह विवाह के बाद भी अपनी अलग विधिक स्थिति बनाए रखती है। उसका कुछ भी परिवर्तन नहीं होता है। मुस्लिम विवाह के लिए आवश्यक बातें मुस्लिम विवाह संपन्न होने के समय किसी प्रकार का धार्मिक अनुष्ठान विधिक रूप आवश्यक नहीं है। विवाह के समय काजी की उपस्थिति भी आवश्यक नहीं है। (निकाह) मुस्लिम विवाह के लिए वैध विवाह के लिए कुछ शर्ते निहित की गयी है। उन शर्तों का पालन नहीं होने पर मुस्लिम विवाह निष्प्रभावी हो जाता है। कुछ शर्ते ऐसी है जिनके पालन नहीं होने से विवाह अनियमित होता है परंतु शून्य नहीं होता है।

**प्रस्ताव और स्वीकृति** अन्य संविदाओं के समान विवाह में भी प्रस्ताव और स्वीकृति होती है। यह आवश्यक है कि विवाह का एक पक्षकार दूसरे पक्षकार से विवाह करने का प्रस्ताव करें। दूसरा पक्षकार प्रस्ताव की स्वीकृति दे तभी विवाह पूर्ण होता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है मुस्लिम विवाह की वही स्थिति है जो किसी अन्य संविदा की होती है। उपस्थिति प्रस्ताव और स्वीकृति प्रकट करने वाले शब्दों का उच्चारण दोनों पक्षकारों या उनके अभिकर्ता (जिन्हें वकील या आम चलन में निक़ाही बाप) कहा जाता है की उपस्थिति में इस प्रकार होना चाहिए कि दोनों पक्षकार एक दूसरे के कथन को सुन सकें। यह सब कुछ केवल **एक ही बैठक में होना** चाहिए, कोई दो अन्य बैठकों में निकाह नहीं होता है। ऐसी उपस्थिति और प्रस्ताव में किसी काजी की कोई आवश्यकता नहीं होती है। केवल प्रस्ताव और उसकी स्वीकृति का महत्व है। साक्षी सुन्नी हनफी विधि के अंतर्गत प्रस्ताव और स्वीकृति **दो पुरुष या एक पुरुष और 2 स्त्री साक्षियों की उपस्थिति** में होना जरूरी है जो **स्वस्थचित्त** और **वयस्क मुसलमान** हो। साक्षी की अनुपस्थिति में विवाह शून्य नहीं होता है परंतु अनियमित जरूर हो जाता है, अर्थात जिस विवाह में साक्षी को पुनः लाकर विवाह को नियमित किया जा सकता है। शिया विधि में बगैर साक्ष्य के भी विवाह को वैध माना जाता है। **स्वतंत्र इच्छा और सहमति** किसी विवाह के पक्षकारों की अपनी स्वतंत्र इच्छा और सहमति पर विवाह करना जरूरी है। उनकी सहमति भय अनुचित दबाव या कपट से मुक्त होना भी जरूरी है। यदि विवाह के पक्षकार स्वस्थचित्त और वयस्क है तो ऐसी दशा में स्वयं उनके द्वारा सहमति का दिया जाना आवश्यक है। **शेख अब्दुल्लाह बनाम फरज़ाना परवीन** के वाद में बॉम्बे उच्च न्यायालय की नागपुर पीठ ने अपने निर्णय में कहा है कि भारत में मुस्लिम अपनी पर्सनल विधि द्वारा शासित होते हैं जिसके अंतर्गत विवाह एक सिविल संविदा है तथा स्थाई अथवा अस्थाई हो सकती है। अतः वैध विवाह के लिए भी वह सभी आवश्यक तत्व जो संविदा के लिए आवश्यक होते है पूरे होने चाहिए।

 एक महिला जो वयस्क और स्वस्थचित्त है विवाह की संविदा के लिए सक्षम है। एक संविदा की वैधता दोनों पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति पर निर्भर करती है। वयस्कता के लिए मुस्लिम विधि के भिन्न नियम थे परंतु भारत में बाल विवाह प्रतिषेध अधिनियम ने पुरुष के लिए 21 वर्ष तथा स्त्री के लिए 18 वर्ष विवाह की आयु निर्धारित की है। आज वर्तमान में कोई भी मुस्लिम विवाह 21 वर्ष से कम पुरुष की आयु और 18 वर्ष से कम स्त्री की आयु में संपन्न नहीं करवाया जा सकता। योग्यता का अभाव वयस्कता, स्वस्थचित्त और स्वतंत्र सहमति के अतिरिक्त भी मुस्लिम विवाह करने के लिए कुछ योग्यताएं हैं।

**कुछ शर्ते** हैं कि संयोग में कोई **विधि अयोग्यता** और बाधा ना हो। विधिक अयोग्यता से तात्पर्य है कि पक्षकार निषिद्ध रिश्तों के भीतर या परस्पर इस प्रकार संबंधित ना हो जो विवाह को अवैध बना दे। यह निषेध चार प्रकार के होते है जो नीचे दिए गए हैं-

 1) **रक्त संबंध या 'क़राबत'-** कुछ ऐसे संबंध होते हैं, जिनसे परस्पर संबंधित स्त्री पुरुषों में एक दूसरे से विवाह नहीं किया जा सकता। यह मुस्लिम विवाह की प्रतिषिद्ध नातेदारी है। इसका संबंध रक्त से है। अपनी माता या दादी (चाहे जितनी पीढ़ी ऊपर हो) अपनी पुत्री या पुत्र (चाहे जितनी पीढ़ी नीचे हो) अपनी बहन चाहे सगी हो या सहोदरा या एकोदरा (चाहे जितनी पीढ़ी ऊपर हो) भाई का पुत्र या पुत्री अपनी या अपने पिता या माता की बहन तथा दादा दादी की बहनें (चाहे जितनी पूरी ऊपर हो)

 2) **विवाह संबंधी या 'मुशारत'** यह रिश्ते विवाह द्वारा जन्म लेते है इनका रक्त से संबंध नहीं होता। पत्नी की माता या दादी (चाहे जितनी पीढ़ी ऊपर हो) पत्नी की पुत्र या पुत्री (चाहे जितनी पीढ़ी नीचे हो) पति की मां का पति पुत्र पौत्र या दौहित्र (नाती)

 3) **दूध का रिश्ता या 'रिज़ा'** जब 2 वर्ष से कम आयु के किसी शिशु ने अपनी मां के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री का दूध पिया है तो शिशु और उस स्त्री के बीच दूध का रिश्ता उत्पन्न हो जाता है। स्त्री उस शिशु की धाय माँ मानी जाती है। दूध का रिश्ता वे होता है जिन्होंने एक ही स्त्री की छाती से दूध पिया है। दूध के संबंधियों का जन्म एक ही माता-पिता से नहीं होता है फिर भी वे विवाह के प्रयोजन के लिए रक्त संबंधी समझे जाते हैं। कोई व्यक्ति केवल अपनी सगी बहन से ही नहीं बल्कि दूध के रिश्ते की बहन से भी विवाह नहीं कर सकता।

4) **इन कारणों के अलावा कुछ असमर्थता अन्य और हैं,** जिनमें कुछ ऐसे कारण हैं जो केवल उसी समय तक अवरोध उत्पन्न करते हैं जिस समय तक उन कारणों का अस्तित्व रहता है। जैसे ही कारणों का अस्तित्व समाप्त हो जाता है वहां असमर्थता पैदा नहीं करते उनमें कुछ कारण निम्न हैं-

**अवैध संयोग-** इसका अर्थ है एक ही समय में इस प्रकार परस्पर संबंधित दो स्त्रियों से विवाह करना कि यदि उसमें से एक पुरुष होता तो उनके बीच विवाह अवैध होता। जैसे 2 बहनों से एक साथ विवाह यह निषेद्ध नातेदारी की विधा से बचने के लिए किया गया है। इसलिए कोई मुसलमान अपनी पत्नी के जीवन काल में उसकी बहन से विवाह नहीं कर सकता। पहली पत्नी को तलाक देने या उसकी मृत्यु हो जाने से यह अवरोध दूर हो सकता है।

**बहुपत्नी-** एक व्यक्ति एक समय में 4 से अधिक पत्नियां नहीं रख सकता। **पांचवी पत्नी से विवाह** जब नियमित होगा जब किसी एक पत्नी को तलाक दे दिया जाए या उसकी मृत्यु हो जाए। इस्लाम से पहले एक व्यक्ति कितनी भी स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता था लेकिन पैगंबर ने विवाह की स्थिति को चार पत्नियों तक सीमित कर दिया और एक पत्नी विवाह को आदर्श विवाह बताया। कुरआन शरीफ में यह स्पष्ट उल्लेख है कि एक पत्नी विवाह को ही उत्तम विवाह बताया जा रहा है- 'स्त्रियों से विवाह करो दो या तीन जो तुम्हें सुंदर लगती हो लेकिन तुम्हें डर है कि तुम उन में न्याय नहीं कर सकते हो तब केवल एक करो' कुरान में एक विवाह पर अधिक बल दिया गया है क्योंकि वह न्याय का प्रश्न रखा गया है परन्तु एक से अधिक विवाह करने से रोका भी नहीं गया है परंतु इस बात पर बल दिया गया है कि विवाह एक ही स्त्री से किया जाए।

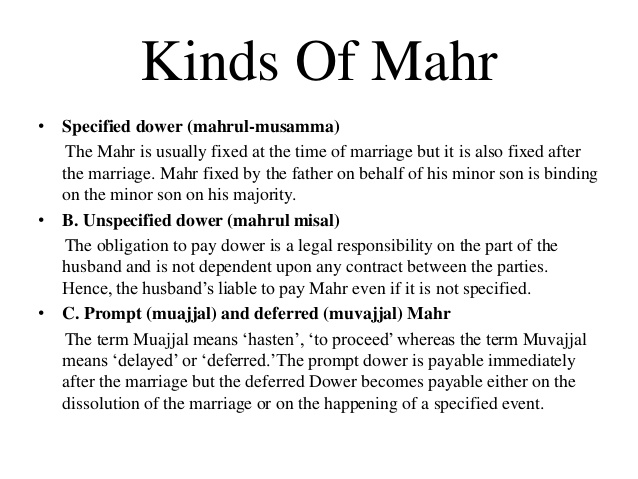
**गवाहों की अनुपस्थिति**- सुन्नी विधि के अनुसार यह अवश्य की कि कम से कम दो साक्षी विवाह के समय यह साबित करने के लिए उपस्थित रहे कि पक्षकारों ने वैध विवाह किया है। उचित रूप से संपन्न हुआ परंतु यदि साक्षी नहीं है तो भी मुस्लिम विवाह किया जा सकता है और बाद में साक्षी बनाए जा सकते हैं। शिया विधि बगैर साक्ष्यों के भी मुस्लिम विवाह को मान्य करती है। **निशा बनाम मुमताज हुसैन** के बाद में यह बात कही गयी है।

**धर्म भिन्नता**- मुस्लिम विवाह केवल 2 मुसलमानों के बीच होता है परंतु मुस्लिम पुरुष को अहले किताब या जैसे यहूदी और ईसाई औरत से निकाह करने की स्वतंत्रता दी गयी है और यह निकाह वैध होगा, परंतु यहां पर मुस्लिम विधि स्त्रियों के साथ अन्याय करती है और मुस्लिम स्त्रियों को ईसाई और यहूदी पुरुष से निकाह करने से रोकती है। यदि कोई मुस्लिम स्त्री किसी यहूदी या ईसाई पुरुष से विवाह करे और बाद में वह पुरुष मुसलमान बन जाए तो निकाह नियमित हो जाएगा। दूसरे की पत्नी से विवाह या विवाहिता स्त्री द्वारा दूसरे पुरुष से विवाह- मुस्लिम विवाह इस परिस्थिति में संपन्न नहीं होता है कि जिसमें स्त्रि किसी अन्य की पत्नी हो। लियाकत अली बनाम करीमन्नीसा के मामले में यह स्पष्ट नियम बताया गया है कि मुस्लिम पद्धति में जब तक पहला विवाह कायम है तब तक विवाहिता स्त्री दोबारा विवाह नहीं कर सकती। कुछ अन्य परिस्थितियों में भी निकाह नहीं हो सकता है

**- गर्भवती स्त्री से विवाह तलाक देने के बाद पूनः उन्हीं पक्षकारों में निकाह।**

**-हज यात्रा पर विवाह --**हज यात्रा पर विवाह सुन्नी हनफी विधि में मान्य बताया गया।

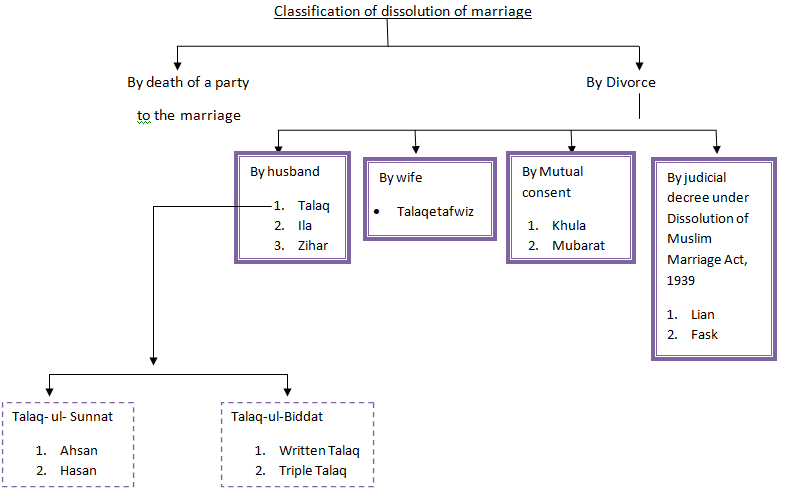
**'मेहर'**

****

'मेहर' स्त्री का अधिकार है, परंतु इतना होने के बाद भी शरीयत के विधान के अधीन भारतीय संसद का बनाया हुआ कानून एक भारतीय मुस्लिम स्त्री को अपने पति से तलाक मांगने का अधिकार देता है। तलाक ए ताफवीज़ ताफ़वीज़ का अर्थ होता है- प्रत्यायोजन। प्रत्यायोजन का अर्थ यह है कि कोई भी मुस्लिम पुरुष किसी शर्त के अधीन अपने तलाक दिए जाने के अधिकार को मुस्लिम स्त्री को प्रत्यायोजित कर सकता है। अपना तलाक देने का अधिकार व मुस्लिम स्त्री को सौंप सकता है। **बफातन बनाम शेख मेमूना बीवी ए आई आर (1995) कोलकाता (304 )**के मामले में पति पत्नी के बीच में करार किया गया कि यदि उनके बीच में असहमति होती है तो पत्नी को अलग रहने का अधिकार होगा और पति भरण पोषण देने के लिए बाध्य होगा। निर्णीत किया गया कि यदि पति अपनी पत्नी के भरण पोषण प्रदान करने में असमर्थ होता है तो पत्नी विवाह विच्छेद प्राप्त करने की हकदार होगी। इस पर यह भी कहा गया कि इस प्रकार का करार सार्वजनिक नीति के विरुद्ध नहीं था।**महराम अली बनाम आयशा खातून** के वाद में पति ने पत्नी को अधिकार प्रदान किया गया था कि यदि वह पत्नी की सहमति के बिना दूसरा विवाह करेगा तो पत्नी ताफ़वीज़ का प्रयोग करके उसे तलाक देगी। निर्मित किया गया है कि इस अधिकार का प्रयोग करके पत्नी द्वारा अपने को दिया गया तलाक वैध व मान्य है।

**विवाह विच्छेद/ तलाक**

लगभग सभी प्राचीन राष्ट्रों में विवाह विच्छेद दांपत्य अधिकारों का स्वाभाविक परिणाम समझा जाता है। रोम वासियों, यहूदियों, इसरायली आदि सभी लोगों में विवाह विच्छेद किसी न किसी रूप में प्रचलित रहा है। इस्लाम आने के पहले तक पति को विवाह विच्छेद के असीमित अधिकार प्राप्त थे। मुस्लिम विधि में तलाक को स्थान दिया गया है परंतु स्थान देने के साथ ही तलाक को घृणित भी माना गया है। पैगंबर साहब का कथन है कि जो मनमानी रीति से पत्नी को अस्वीकार करता है, वह खुदा के शाप का पात्र होगा। पैगम्बर के निकट मनमाना तलाक अत्यंत बुरे कार्यों में से एक है। मुस्लिम विधि में तलाक देने का अधिकार पुरुष के पास है, परंतु मुस्लिम स्त्री को भी तलाक मांगने का अधिकार है, वह न्यायालय में जाकर अपने विवाह को विघटित करवाने हेतु पति से तलाक मांग सकती है। इस लेख के माध्यम से एक मुस्लिम स्त्री के तलाक मांगने के अधिकारों पर चर्चा की जा रही है.. कोई मुस्लिम पुरुष किसी मुस्लिम स्त्री को आकारण भी तलाक देने का अधिकार रखता है। मुस्लिम विवाह में तलाक यदि पुरुष का अधिकार है



**खुला Khula**

**खुला** इस्लाम धर्म के आगमन के पूर्व एक पत्नी को किसी भी आधार पर विवाह विच्छेद की मांग का अधिकार नहीं था। कुरआन द्वारा पहली बार पत्नी को तलाक प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हुआ था। फतवा ए आलमगीरी जो कि भारत में मुसलमानों की मान्यता प्राप्त पुस्तक है उसमें कहा गया है कि जब विवाह के पक्षकार राज़ी हैं और इस प्रकार की आशंका हो कि उनका आपस में रहना संभव नहीं है तो पत्नी प्रतिफल स्वरूप कुछ संपत्ति पति को वापस करके स्वयं को उसके बंधन से मुक्त कर सकती है।खुला मुस्लिम विवाह में पारस्परिक विवाह को कहा जाता है। यह एक प्रकार का पारस्परिक सम्मति के द्वारा विवाह विच्छेद होता है, जिसमें पति पत्नी दोनों की इच्छा से विवाह विच्छेद कर दिया जाता है। मुंशी 'बुज़ुल उल रहमान बनाम लतीफुन्नीसा' के वाद में प्रिवी काउंसिल के माननीय न्यायाधीशों द्वारा खुला की उपयुक्त परिभाषा की गई है जो इस प्रकार है- 'खुला के द्वारा तलाक पत्नी की संपत्ति और प्रेरणा से दिया गया एक ऐसा तलाक है, जिसमें विवाह बंधन से अपने छुटकारे के लिए वह पति को कुछ प्रतिफल देती है या देने की संविदा करती है। ऐसे मामले में पति और पत्नी आपस में करार करके शर्ते निश्चित कर सकते हैं और पत्नी प्रतिफल के स्वरूप में अपने मेहर को और अधिकारों को छोड़ सकती है अथवा पति के लाभ के लिए कोई दूसरा करार कर सकती है।' खुला में पत्नी द्वारा तलाक का प्रस्ताव रखा जाता है। असल में खुला पत्नी द्वारा पति से खरीदा गया तलाक का अधिकार है। इस्लाम में तलाक देने का अधिकार केवल पति के पास है। पत्नी तलाक मांग सकती है।

**मुबारत (पारस्परिक छुटकारा)** मुबारत का शाब्दिक अर्थ होता है पारस्परिक छुटकारा। मुबारत में प्रस्ताव चाहे पत्नी की ओर से आए या पति की ओर से उसकी स्वीकृति तलाक कर देता है। पत्नी का इद्दत काल का पालन करना अनिवार्य हो जाता है। मुबारत भी विवाह विच्छेद का एक तरीका है। यह वैज्ञानिक दावों से पारस्परिक निर्मुक्ति प्रदर्शित करता है। मुबारत में अरुचि पारस्परिक होती है, पति पत्नी दोनों अलग होना चाहते हैं, इस कारण इसमें पारस्परिक सम्मति का तत्व निहित रहता है। दोनों ओर से सहमति होने पर मुबारत तलाक हो जाता है। खुला और मुबारत में सबसे महत्वपूर्ण अंतर यह है कि मुबारक दोनों पक्षकारों में से कहीं से भी किया जा सकता है परंतु खुला का प्रस्ताव केवल स्त्री द्वारा रखा जाता है। मुबारत में किसी पक्षकार को कोई धनराशि किसी भी पक्षकार को नहीं देना होती है। खुला का प्रस्ताव पति के तैयार नहीं होने की स्थिति में रखा जाता है परंतु मुबारत में दोनों सहमत होते हैं। भारतीय मुसलमानों में वर्तमान में सबसे अधिक इस ही तलाक का प्रचलन है। लिएन जब कोई पति अपनी पत्नी पर व्यभिचार का आरोप लगाए किंतु आरोप झूठा हो वहां पत्नी का अधिकार हो जाता है कि वह दावा करके विवाह विच्छेद कर ले। कोई भी वयस्क और स्वास्थ्यचित पति अपनी पत्नी पर कोई व्यभिचार का आरोप लगाता है, पति कहता है कि पत्नी ने किसी अन्य पुरुष के साथ सेक्स किया है तो ऐसे आरोप में यदि आरोप झूठा निकलता है तो स्त्री इस आधार पर तलाक मांग सकती है। **मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम 1939** किसी समय तक एक मुस्लिम स्त्री को केवल दो आधारों पर न्यायालय में तलाक मांगने का अधिकार था। (1) पति की नपुंसकता (2) परपुरुष गमन का झूठा आरोप (लिएन) इस पर मुस्लिम महिलाओं से संबंधित बहुत विसंगतियां मुस्लिम विवाह में जन्म लेने लगीं। ऐसी परिस्थितियों का उदय हुआ, जिनके होने पर एक मुस्लिम महिला तलाक मांग सकती थी, परंतु मजबूरी में तलाक नहीं मांग पा रही थी। हनफ़ी विधि में मुस्लिम स्त्री को अपने विवाह को समाप्त करने का अधिकार नहीं था, परंतु हनफ़ी विधि में या व्यवस्था है कि यदि हनफी विधि के पालन में कठिनाई हो रही है तो मालिकी, शाफ़ई या हनबली विधि का प्रयोग किया जा सकता है। इसी को आधार बनाकर इस्लामिक शरीयत के दायरे में मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम 1939 पारित किया गया, जिसे सभी मुसलमानों पर चाहे वह किसी भी स्कूल से संबंधित हो लागू किया गया है। इस अधिनियम की धारा 2 के अंतर्गत कोई भी मुस्लिम स्त्री निम्न आधारों पर न्यायालय में जाकर अपने विवाह को विघटित करवाने की डिक्री पारित करवा सकती है। (1) पति की अनुपस्थिति यदि पति 4 साल तक अनुपस्थित रहता है तो ऐसी परिस्थिति में एक मुस्लिम महिला अपने विवाह को विघटन करने के लिए न्यायालय में आवेदन देकर डिक्री ले सकती है। यह डिक्री इसके पारित होने के 6 महीने के भीतर प्रभावी होती है। यदि 6 महीने के भीतर पति वापस लौट आता है तो डिक्री को वापस रद्द करना होता है। (2) भरण पोषण करने में पत्नी की असफलता यदि पति 2 साल तक पत्नी के भरण पोषण के संबंध में उपेक्षा करे या असफल रहे तो भी मुस्लिम विधि के अंतर्गत विवाहिता स्त्री विवाह विच्छेद की डिक्री की हकदार हो जाती है। पति वाद का केवल इस आधार पर प्रतिवाद नहीं कर सकता कि वह अपनी निर्धनता, अस्वस्थता, बेरोजगारी या कारावास या अन्य किसी आधार पर उसका भरण पोषण नहीं कर सकां। मुस्लिम विधि में एक पति को अपनी पत्नी का भरण पोषण करने का परम कर्तव्य सौंपा गया है। यदि वह कर्तव्य को भलीभांति पूरा नहीं करता है तो पत्नी को यह अधिकार है कि वो उससे तलाक मांग ले। फैसल मोहम्मद बनाम उम्मा रहीम के वाद में सिंध के मुख्य न्यायालय ने यह निर्धारण किया कि मुसलमानों पर प्रयोग सामान्य विधि को रद्द करना अधिनियम का आशय नहीं था और यह नहीं कहा जा सकता कि पति ने अपनी पत्नी के भरण पोषण का प्रबंध करने में उपेक्षा की या उसमें वह सफल रहा जब तक कि पति पर सामान्य मुस्लिम विधि के अंतर्गत भरण पोषण का दायित्व न हो। विवाह विच्छेद के लिए पत्नी का वाद खारिज कर दिया गया, क्योंकि पाया गया कि वह अपने पति के प्रति वफादार नहीं थी। पत्नी का वफादार होना आवश्यक है यदि पुरुष पत्नी के वफादार होते हुए भी उसका भरण पोषण नहीं कर रहा है तो इस आधार पर तलाक मांगा जा सकता। 'मोहम्मद नूर बीबी बनाम पीर बख्श' के वाद में यह निर्णीत हुआ कि यदि पति वाद दायर करने के 2 वर्ष तुरंत पूर्व की अवधि तक पत्नी को भरण-पोषण देने में असफल रहता है तो पत्नी इस अधिनियम की धारा 2 (2) के अंतर्गत विवाह विच्छेद के लिए हकदार है। (3) पति का कारावास यदि पति को 7 साल तक का कारावास दे दिया जाता है। दंडादेश अंतिम हो गया है तथा इस दंडादेश के विरुद्ध किसी भी न्यायालय में कोई अपील नहीं की जा सकती है तो ऐसी परिस्थिति में पत्नी न्यायालय से तलाक की डिक्री मांग सकती है। (4) दांपत्य दायित्व के पालन में असफलता यदि बिना उचित कारण के पति ने 3 साल तक दांपत्य दायित्व का पालन नहीं किया है तो पत्नी विवाह विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने की हकदार है। मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम 1939 के अंतर्गत पति के दांपत्य दायित्व की परिभाषा नहीं दी गई है। न्यायालय इस धारा के प्रयोजन के लिए पति के केवल ऐसे दांपत्य दायित्व का अवलोकन करेगा जिनको इस अधिनियम की धारा (2 )के किसी उपखंड में सम्मिलित नहीं किया गया है। (5) पति की नपुंसकता यदि पति विवाह के समय नपुंसक था और अब भी है तो पत्नी विवाह विच्छेद की न्यायिक डिक्री प्राप्त करने की हकदार है। डिक्री पारित करने से पूर्व न्यायालय पति के आवेदन पर उससे अपेक्षा करते हुए यह आदेश पारित करेगा कि ऐसे आदेश पाने के 1 साल के अंदर वह न्यायालय को इस बारे में आश्वस्त कर दे कि वह नपुंसक नहीं रह गया है, यदि वैसा कर दे तो डिक्री प्रभावी नहीं की जाएगी। नपुंसक से पूर्ण और संबंधित नपुंसक दोनों को लिया जाता है। पूर्ण नपुंसक प्रत्येक स्त्री के प्रति नपुंसक होता है और संबंधित नपुंसक किसी निर्धारित स्त्री के प्रति नपुंसक होता है। यदि पति अपनी पत्नी के प्रति नपुंसक है उसके साथ सहवास नहीं कर पाता है तो ऐसी परिस्थिति में पत्नी द्वारा तलाक मांगा जा सकता है और इस आधार पर न्यायालय डिक्री पारित कर सकता है। (6) पति का पागलपन पति यदि पागल हो गया है या फिर कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गया है या फिर ऐसे रोग से पीड़ित हो गया है जिसका संक्रमण एक से दूसरे में फैलता है। जैसे कोई मुस्लिम स्त्री का पति एचआईवी एड्स से पीड़ित हो गया है, एड्स यौन संबंधों से होने वाली बीमारी है। ऐसे में उसका पति उस महिला के साथ संभोग करेगा, उस महिला को भी एचआईवी एड्स होने की प्रबल संभावना है। ऐसी परिस्थिति में महिला न्यायालय में तलाक की डिक्री मांग सकती है। (7) पत्नी द्वारा विवाह अस्वीकृत करना यदि पत्नी का विवाह उसकी अवयस्कता में उसके माता-पिता की सहमति से कर दिया गया था तो 18 साल के पहले अपने विवाह को अस्वीकार करवा सकती है तथा न्यायालय में इस आधार पर डिक्री मांग सकती है कि उसका विवाह उसकी सहमति से नहीं हुआ था और ऐसे समय हुआ था जब वह 'ख़्यार उल बुलुग' अर्थात बालिग नहीं थी। (8) पति की निर्दयता अधिनियम की धारा 2(8 ) के अनुसार पति द्वारा निर्दयता या क्रूरता करने पर भी पत्नी द्वारा न्यायालय से तलाक की डिक्री मांगी जा सकती है। पति पत्नी के साथ मारपीट करता है, अनैतिक औरतों के साथ संबंध रखता है, तवायफ के कोठे पर जाता है, दहेज की मांग करता है, पत्नी के माता-पिता को गाली देता है तो ऐसी परिस्थिति में पति से पत्नी तलाक मांग सकती है। न्यायालय को इस आधार पर डिक्री प्रदान करनी होगी। **इतवारी बनाम मुसममात असगरी** के महत्वपूर्ण वाद में पति ने अपनी पहली पत्नी के विरुद्ध दांपत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना का वाद दायर किया था। इस पर पत्नी ने पति द्वारा दूसरी पत्नी लाए जाने को निर्दयता के आधार पर अपने माता-पिता के साथ रहने का निवेदन किया। मुंसिफ ने इसे पत्नी द्वारा निर्दयता के सबूत न दे सकने के कारण पति का वाद डिक्री कर दिया। पत्नी द्वारा जिला न्यायालय के समक्ष अपील करने पर मुंसिफ ने अपने निर्णय को पलट दिया। पति द्वारा उच्च न्यायालय में अपील करने पर न्यायमूर्ति एस० एस० धवन ने अपील खारिज करते हुए कहा की दूसरी पत्नी लाने वाले को साबित करना चाहिए कि उसके द्वारा दूसरी पत्नी लाना पहली पत्नी का अपमान नहीं है। '**के मोहम्मद लतीफ बनाम निशाद'** के वाद में न्यायालय ने यह माना है कि दूसरा विवाह क्रूरता की श्रेणी में तब आता है जब वह पहली स्त्री की आज्ञा के बगैर किया गया है। पहली पत्नी ने आज्ञा नहीं दी और दूसरा निकाह कर लिया गया, ऐसी परिस्थिति में दूसरा निकाह कुरआन सम्मत नहीं होगा तथा ऐसे निकाह को क्रूरता माना जाएगा। कुरान सम्मत निकाह तभी होगा जब पहली पत्नी के साथ न्याय होगा और पहली पत्नी विवाह की आज्ञा देती है तो ही न्याय का प्रश्न खड़ा होता है

**मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939**

धारा 2. विवाह-विघटन की डिक्री के लिए आधार-मुस्लिम विधि के अधीन विवाहित स्त्री अपने विवाह के विघटन के लिए निम्नलिखित आधारों में से किसी एक या अधिक आधार पर डिक्री प्राप्त करने की हकदार होगी, अर्थात् :-

(i) चार वर्ष से पति का ठौर-ठिकाना ज्ञात नहीं है;

(ii) पति ने दो वर्ष तक उसके भरण-पोषण की व्यवस्था करने में उपेक्षा की है या उसमें असफल रहा है;

(iii) पति को सात वर्ष या उससे अधिक की अवधि के लिए कारावास का दण्ड दिया गया है;

(iv) पति तीन वर्ष तक अपने वैवाहिक कर्तव्यों का पालन करने में समुचित कारण बिना असफल रहा है;

(v) पति विवाह के समय नपुंसक था और बराबर नपुंसक रहा है;

(vi) पति दो वर्ष तक उन्मत्त रहा है या कुष्ठ या उग्र रतिज रोग से पीड़ित है;

(vii) पन्द्रह वर्ष की आयु प्राप्त होने से पहले ही उसके पिता या अन्य संरक्षक ने उसका विवाह किया था और उसने अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने से पूर्व ही विवाह का निराकरण कर दिया है;

             परन्तु यह तब जब विवाहोत्तर संभोग न हुआ हो;

(viii) पति उसके साथ क्रूरता से व्यवहार करता है, अर्थात् :-

(क) अभ्यासतः उसे मारता है या क्रूर-आचरण से उसका जीवन दुखी करता है, भले ही ऐसा आचरण शारीरिक दुर्व्यवहार की कोटि में न आता हो, या

(ख) कुख्यात स्त्रियों की संगति में रहता है या गर्हित जीवन बिताता है, या

(ग) उसे अनैतिक जीवन बिताने पर मजबूर करने का प्रयत्न करता है, या

(घ) उसकी सम्पत्ति का व्ययन कर डालता है या उसे उस पर अपने विधिक अधिकारों का प्रयोग करने से रोक देता है, या

(ङ) धर्म को मानने या धर्म-कर्म के अनुपालन में उसके लिए बाधक होता है, या

(च) यदि उसकी एक से अधिक पत्नियां हैं तो कुरान के आदेशों के अनुसार उसके साथ समान व्यवहार नहीं करता है;

(ix) कोई ऐसा अन्य आधार है जो मुस्लिम विधि के अधीन विवाह विघटन के लिए विधिमान्य है :

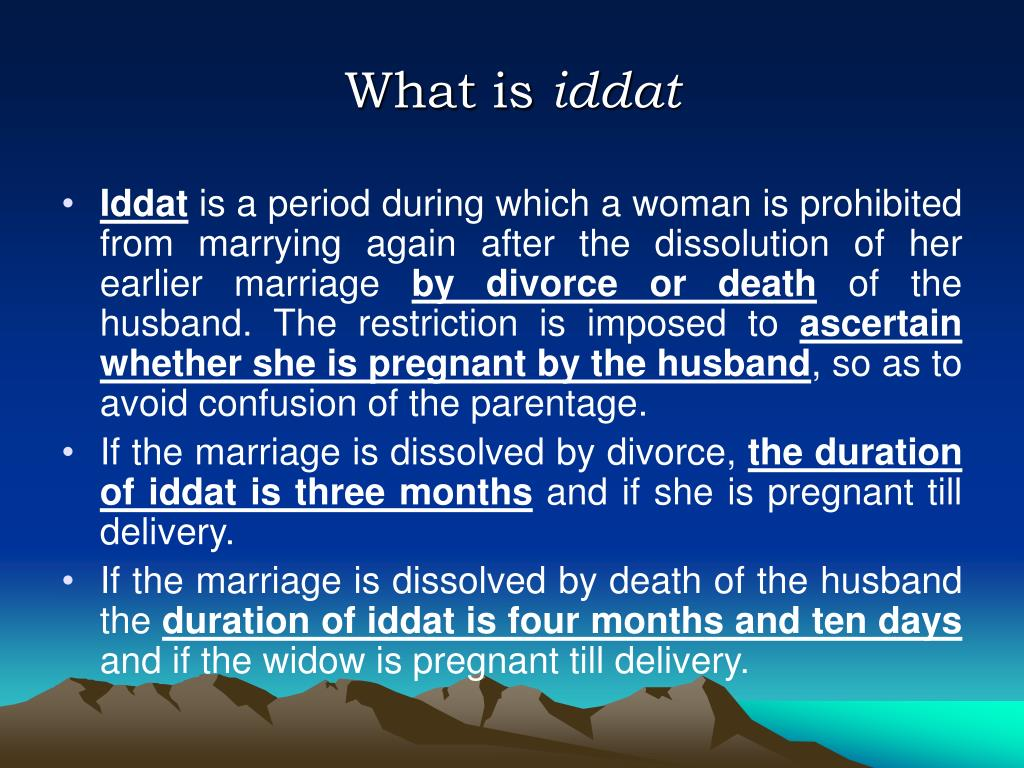
परन्तु-

(क) आधार (iii) पर तब तक कोई डिक्री पारित नहीं की जाएगी जब तक दण्डादेश अन्तिम न हो गया हो;

(ख) आधार (i) पर पारित डिक्री, ऐसी डिक्री की तारीख से छह मास तक प्रभावी नहीं होगी और यदि पति या तो स्वयं या किसी प्राधिकृत अभिकर्ता के माध्यम से उस अवधि में हाजिर हो जाता है, और न्यायालय का यह समाधान कर देता है कि वह अपने दाम्पत्य कर्तव्यों का पालन करने के लिए तैयार है, तो न्यायालय उक्त डिक्री को अपास्त कर देगा; और

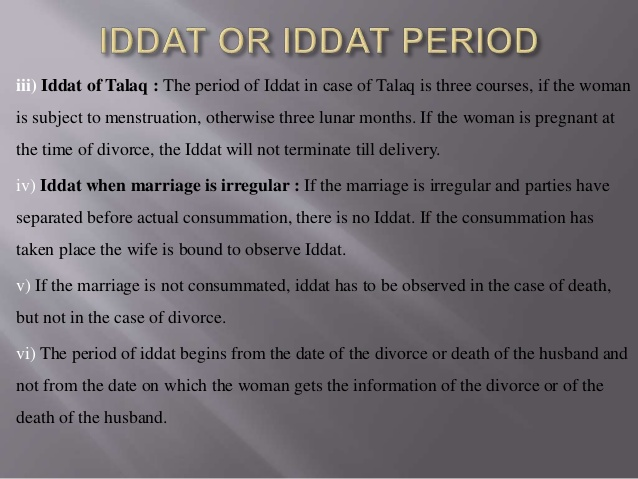
(ग) आधार (ध्) पर कोई डिक्री पारित करने के पूर्व न्यायालय, पति द्वारा आवेदन किए जाने पर, ऐसा आदेश करेगा जिसमें पति से यह अपेक्षा की जाएगी कि वह उस आदेश की तारीख से एक वर्ष के भीतर न्यायालय का यह समाधान कर दे कि वह नपुंसक नहीं रह गया है और यदि पति उस अवधि में इस प्रकार न्यायालय का समाधान कर देता है तो उक्त आधार पर कोई भी डिक्री पारित नहीं की जाएगी ।

इद्दत ( IDDAT)



इद्दत अरबी शब्द है, शाब्दिक अर्थ 'गिनती' है। इस्लाम धर्म में तलाक़ या पति के मरने के पश्चात दूसरे विवाह के अंतराल या मुद्दत को कहते हैं, जिसके बीच वे अन्य पुरुष से विवाह नहीं कर सकतीं।

'**इद्दत** अवधि तीन तरह की **होती** है। बुजुर्ग महिला को चार महीने दस **दिन इद्दत** में रहना होता है, जबकि जवान महिला को तीन मासिक माहवारी के दौरान पर-पुरुष के सामने आने से बचना होता है। वहीं, गर्भवती महिला की **इद्दत** अवधि बच्चे को जन्म देने के तुरंत बाद समाप्त हो जाती है।



**अवयस्कता और  संरक्षकता**

किसी भी पर्सनल विधि में संरक्षता अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। अवयस्क का संरक्षक कौन होगा और किन मामलों में संरक्षक की नियुक्ति की जाएगी, यह एक तात्विक प्रश्न बनता है। भारत में गार्जियनशिप अधिनियम के साथ मुस्लिम पर्सनल विधि भी है जो भारत के मुसलमानों पर लागू होती है, इसके नियम मुसलमानों के व्यक्तिगत अवयस्क के संरक्षण के लिए इस्तेमाल होते हैं। इसमें एक महत्वपूर्ण विषय शरीर की संरक्षता है जिसे हिज़ानात कहते हैं। कई बार पति पत्नी के बीच विवाद होने, संबंध विच्छेद हो जाने पर अवयस्क बच्चे की संरक्षता प्रश्न खड़ा होता है तथा यह विवाद हो जाता है कि जो अवयस्क संतान है उसका संरक्षक माता या पिता में से कौन होगा?यदि दोनों नहीं हो तो संरक्षक कौन होगा?

 शरीर की संरक्षता (हिज़ानत)   अवयस्क लड़के और अवयस्क लड़कियों के शरीर को संरक्षता का अधिकार हिज़ानात कहलाता है। इस अरबी शब्द का अर्थ होता है बच्चे के भरण-पोषण के लिए उसका संरक्षण। मां हनफी विधि के अंतर्गत मां तब तक अभिरक्षा की हकदार होती है, जब तक कि पुत्र 7 वर्ष का नहीं हो जाता या पुत्री यौनावस्था की आयु प्राप्त नहीं कर लेती।

शाफ़ई और मलिकी विधि के अंतर्गत तो मां लड़की के विवाह तक उसके संरक्षक का अधिकार रख सकती है। **शोराहबी बनाम दीन मोहम्मद एआईआर 1988** के मामले में यह कहा गया है- "बच्चे के पिता द्वारा तलाक दिए जाने पर भी मां का यह अधिकार है परंतु यदि बच्चे के पिता ने मां को तलाक दे दिया है और तदुपरांत मां किसी अन्य व्यक्ति से विवाह कर लेती है तो ऐसे में वह बच्चे की अभिरक्षा के अधिकार से वंचित हो जाएगी।" मुस्लिम विधि के अंतर्गत मां को बच्चे की अभिरक्षा का अधिकार उस समय तक ही दिया गया है जिस समय तक वह किसी अन्य व्यक्ति से विवाह नहीं करती है। यदि किसी अन्य व्यक्ति से विवाह कर लेती है, कोई ऐसे व्यक्ति से विवाह कर लेती है जो बच्चे के खून के रिश्ते में नहीं होता है तो ऐसी परिस्थिति में मां अभिरक्षा का अधिकार खो देती है। बच्चे से खून का रिश्ता उस पुरुष का होना आवश्यक है जिससे मां निकाह करेगी, इस्लाम में अजनबी से निकाह करने के बाद बच्चे की अभिरक्षा का अधिकार मां को नहीं होता है। **इम्तियाज बानो बनाम मसूद अहमद जाफ़री एआरआई 1979 इलाहाबाद हाईकोर्ट 125** का फैसला है, जिसमें श्रीमती इम्तियाज बानो का विवाह 4 जुलाई 1967 को मसूद अहमद जाफरी से संपन्न हुआ। विवाह से 3 पुत्र हुए, जिनमें से सबसे छोटे पुत्र की मृत्यु हो गयी। दो पुत्रों में से एक की आयु 5 वर्ष दूसरे की आयु 3 वर्ष थी। पति पत्नी के बीच संबंध खराब होने का कारण तलाक दे दिया गया। यह निर्णय लिया गया कि माता दोनों अवयस्क बच्चों की अभिरक्षा के लिए हकदार है। इस मुकदमे में फैसले का मुख्य आधार बच्चों का कल्याण है। न्यायालय सर्वप्रथम नियम बच्चे के कल्याण का रखता है। रेहान **फातिमा बनाम सैयद बदरुद्दीन परवेज़** के मुकदमे में एक 3 वर्ष 6 माह के बच्चे की अभिरक्षा के संबंध में निर्णय देते हुए आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय ने कहा कि मुस्लिम विधि में मां का बच्चे को अपने पास रखने का अधिकार तलाक द्वारा विवाह विच्छेद के पश्चात तथा गार्जियनशिप एंड वर्ड्स 1890 में किसी अन्य विकल्प होने के बावजूद भी बना रहता है। मां के धर्म परिवर्तन पर भी उसका संतान को अपने पास रखने का अधिकार समाप्त नहीं होता है। र**हीमा खातून बनाम सबरुननिशा एआईआर 1996 गुवाहाटी 33** के नवीन मुकदमे में गुवाहाटी उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि माता अपनी अवयस्क पुत्री की संरक्षता का अधिकार नहीं रखेगी, यदि वह किसी ऐसे व्यक्ति से पुनर्विवाह कर लेती है जो इस पुत्री के खून के रिश्तेदारों में नहीं आता हो। इस वाद में न्यायालय ने लड़की की दादी को माता के होते हुए भी प्रमाणिक संरक्षक नियुक्त किया। न्यायालय का मुस्लिम विधि के अंतर्गत माता को संरक्षता का अधिकार देने के मामले में केवल इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि माता ने किसी अनजान व्यक्ति से निकाह तो नहीं किया जिससे बच्चे के कल्याण पर कोई विपरीत प्रभाव पड़ेगा। मां के नहीं होने पर अन्य स्त्री संबंधी मां के ना होने पर 7 वर्ष से कम आयु के बालक और यौनावस्था प्राप्त नहीं हुई बालिका की अभिरक्षा का अधिकार निम्नलिखित स्त्री संबंधियों को नीचे दिए गए क्रम में पहुंचता है। इन लोगों का अधिकार जब प्राप्त होता है जब मां नहीं होती है। मां की मां- पिता की मां- सगी बहन- सहोदरा बहन- सगोत्री बहन- सगी बहन की लड़की- सहोदरा बहन की लड़की- सगोत्री की बहन की लड़की- मौसी बहनों के समान क्रम में- बुआ बहनों के समान क्रम में- यदि मां नहीं होती है व पिता की मां नहीं होती है और मां के संबंधी भी नहीं होते है ऐसी स्थिति में संरक्षता का अधिकार पुरुष की तरफ चला जाता है और पिता और उसके जितने भी निकटतम संबंधी होते हैं उन पर चला जाता है। माता और माता के संबंधियों में संरक्षण प्राप्त करने के लिए कुछ अयोग्यता भी हैं।

 यदि माता और उसके संबंधी निम्न अयोग्यता के अंदर आते हैं तो न्यायालय बच्चे की संरक्षता उन्हें नहीं देता है। ये अयोग्यता निम्न हैं जब भी वह अनैतिक जीवन बिताती हो- यदि बच्चे की उचित देखभाल करने में उपेक्षा बरती हो- यदि ऐसे पुरुष से विवाह कर ले जो बच्चे के खून के रिश्तों के भीतर संबंधी ना हो परंतु ऐसे विवाह, मृत्यु, विवाह विच्छेद के कारण विघटन हो जाता है तो मां की अभिरक्षा का अधिकार पुनर्जीवित हो जाता है। यदि विवाह के कायम रहते हुए वह पिता के स्थान से बहुत दूर रहने लगे। **पुलक्कल आइसा कुट्टी बनाम पारत अब्दुल समद एआईआर 2005 केरल 68** के वाद में शिशु की माता ने आत्महत्या कर ली थी, इसलिए यह शिशु अपनी नानी के पास रहता था जो स्वयं डायबिटीज की मरीज थी तथा अपनी दूसरी पुत्री के ऊपर निर्भर थी। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था तथा उससे बच्चे भी थे। पिता ने न्यायालय में अपने इस बच्चे की संरक्षता का दावा किया। इस वाद में न्यायालय ने निर्धारित किया कि पिता का दूसरा विवाह कोई ऐसा आचरण नहीं है जिसके आधार पर उसे अपने बच्चे की संरक्षता के दावे से वंचित किया जाए बच्चे का कल्याण सर्वोपरि है। नानी की भावुकता का आदर करते हुए न्यायालय का मत था कि बच्चे के कल्याण को ध्यान में रखते हुए उसे पिता के साथ रहना चाहिए। **श्रीमती मेहरून्निसा बनाम मुख्तार अहमद एआईआर 1975 इलाहाबाद 67** के मुकदमे में निर्णीत किया गया था कि अवयस्क जिसकी आयु 10 से 11 वर्ष है अपनी मां की अभिरक्षा में है और उसने अपने मां के साथ रहने के लिए विवेकपूर्ण ढंग से अपने 'अधिनियम परफॉर्मेंस' का प्रयोग किया है तो मां का संरक्षण छीन कर पिता को नहीं दिया जाएगा। यदि मुस्लिम विधि के अंतर्गत पिता वयस्क नैसर्गिक संरक्षक होता है परंतु निर्विवाद रूप से स्थापित नियम है कि संरक्षता अधिनियम की धारा 25 के अधीन कार्यवाही में अवयस्क के संरक्षक के विषय में निर्णय करते हुए अवयस्क के कल्याण का ध्यान रखा जाना चाहिए तथा इस अधिनियम में सर्वोपरि इस बात पर बल दिया जाए की बच्चे का कल्याण क्या होगा। बच्चे का भविष्य क्या होगा परंतु इस नियम को कदापि नहीं पलटा जा सकता कि 7 वर्ष के पूर्व किसी पुत्र को उसकी माता से छीन कर उसके पिता को दिया जा सके और यौनावस्था प्राप्त करने के पूर्व पुत्री को छीन कर उसके पिता को दिया जा सके। परंतु यदि स्त्री अयोग्यता के मापदंड को पूरा कर रही है और वह बच्चे की संरक्षता के लिए योग्य नहीं है तो उसे संरक्षता नहीं दी जाएगी। **अब्दुल सत्तार हुसैन कुदचिकर बनाम शाहिना अब्दुल सत्तार कुदचिकर एआईआर 1996 बॉम्बे 134** के मुकदमे में बॉम्बे हाईकोर्ट के समक्ष प्रश्न उठाया गया कि क्या अवयस्क की कस्टडी तय करते समय बच्चे के कल्याण का ध्यान रखना चाहिए? इस बात में पति पत्नी सुन्नी मुसलमान थे, जिनका विवाह 1988 में पुणे में हुआ था इनके 5 वर्ष का एक पुत्र एक 2 वर्ष की एक पुत्री थी। पिता मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव था और ₹450 महीना कमाता था। माता टेलीफोन विभाग में कार्य करती थी और ₹300 प्रतिमाह कमाती थी। 1994 में पक्षकारों का विवाह विच्छेद हो गया और 1995 में पति ने दूसरा विवाह कर लिया। 1995 में पत्नी ने अपने पुत्र की अभिरक्षा के लिए आवेदन दिया। उसने कहा कि मुस्लिम विधि के अंतर्गत उसे पुत्र के 7 वर्ष होने तक तथा पुत्री के अवयस्क होने तक अभिरक्षा का अधिकार है। पति ने न्यायालय के समक्ष आग्रह किया कि पत्नी की आय उसकी आय से कम है इसलिए पुत्र को माता की अभिरक्षा में रखना उसके कल्याण में नहीं होगा। उच्च न्यायालय ने अपना निर्णय देते हुए कहा कि इसमें कोई संदेह नहीं कि पर्सनल मुस्लिम विधि के अंतर्गत पुत्र की अभिरक्षा का अधिकार माता को होगा परंतु हमें सर्वप्रथम अवयस्क के कल्याण के बारे में देखना होगा। केवल अधिक आय होना ही बच्चे के कल्याण का आधार नहीं हो सकता। यहां पिता ने दूसरा विवाह कर लिया और उसके व्यापार की प्रकृति ऐसी है कि उसे दिनभर घूमना होता है, कई दिनों तक घर नहीं आता दूसरी ओर माता भले ही कम कमाती है परंतु प्रत्येक शाम अपने घर बच्चों के पास आती है। उनका पूरा ख्याल रखती है ऐसी परिस्थिति में पुत्र का माता की अभिरक्षा में ही रहना बच्चे का कल्याण होगा क्योंकि किसी भी परिस्थिति में जन्म देने वाली मां कल्याणी होती है ना कि वह मां जिसे सौतेली कहा जाता है। जन्म देने वाली मां का प्रेम और स्नेह सर्वमान्य है सर्वोत्तम है।

कुछ परिस्थितियां ऐसी है जिनमें माता से अभिरक्षा का अधिकार लिया जा सकता है। वे निम्न हैं-

 यदि वह अनैतिक हो अर्थात उसने परपुरुष गमन किया हो या खुली अनैतिकता से कोई दंडनीय अपराध किया हो, गाना गाने वाली या मातम करने वाली स्त्री का पेशा अपना लिया हो।

 यदि वह ऐसे व्यक्ति से विवाह कर ले जो निषिद्ध असत्तियो के भीतर अवयस्क का रिश्तेदार ना हो, जैसे किसी अजनबी से शादी कर ले।

 यदि वह विवाहिता अवस्था में होकर अवयस्क के पिता के निवास स्थान के इतनी दूर रहने लगे कि अक्सर उसके बच्चों के पास ना आ सके।

 यदि वह उपेक्षा करें या बच्चों की उचित देखभाल करने में असमर्थ हो उनका खानपान तक कर पाने में असमर्थ हो।

 पिता नैसर्गिक संरक्षक होता है परंतु अवयस्क पुत्र कि 7 वर्ष तक के और अवयस्क की पुत्री जब तक वह यौनावस्था प्राप्त कर ले तब तक संरक्षक किसी भी सूरत में मुस्लिम विधि के अंतर्गत माता ही होगी। हालांकि इसमें यह शर्त है कि माता को संतान का संरक्षण प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उसे निर्योग्य घोषित नहीं किया गया हो

**हक शुफ़ा**

 अग्रक्रयाधिकार अर्थात हक शुफ़ा (Pre-emption right) कुछ स्थितियों में क्रेताओं के स्थान पर किसी अचल संपत्ति के अनिवार्य क्रय करने का अधिकार है। यह एक प्रकार का ऐसा अधिकार है जो किसी अचल संपत्ति से निकट का संबंध रखने वाले को उसके क्रय करने के संबंध में प्राप्त होता है। मुस्लिम विधि में अग्रक्रय भी एक अधिकार बताया गया है। यदि कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति को विक्रय करता है तो ऐसी स्थिति में उस संपत्ति को क्रय करने का प्रथम अधिकार किसके पास होगा।

आधुनिक विधियां यह कहती हैं कि कोई भी व्यक्ति अपनी संपत्ति किसी को भी विक्रय कर सकता है और कोई भी उसे क्रय कर सकता है। संविधान के मूल अधिकारों में 44 वें संशोधन के पहले तक यह एक मूल अधिकार था परंतु संशोधन के उपरांत इसको मूल अधिकार से समाप्त कर दिया गया। कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति को विक्रय तो कर सकता है परंतु उस संपत्ति को खरीदने का प्रथम हक़ कुछ व्यक्तियों को दिया गया है तथा वह व्यक्ति यदि उस संपत्ति में कोई हित रखते हैं तो ऐसी परिस्थिति में प्रथम रूप से उनके अधिकार रखने वाले व्यक्तियों को संपत्ति खरीदने का हुक्म दिया गया है।और उससे संबंधित महत्वपूर्ण बातें पैगंबर साहब ने अपनी हदीस में अपनी संपत्ति को प्रथम अपने पड़ोसी या उस संपत्ति के हिस्सेदार को बेचने का हुक्म दिया है। पैगंबर साहब ने अपनी हदीस में मुसलमानों को यह एक प्रकार का नियम बताया है। आधुनिक परिक्षेप में हम इसको इस तरह समझ सकते हैं जैसे किसी कॉलोनी में कुछ व्यक्ति रहते हैं। उस कॉलोनी में कोई रहवासी संघ बना हुआ है तथा कॉलोनी संघ के लोग चाहते हैं कॉलोनी के भीतर कोई बाहर का अनजान व्यक्ति आकर नहीं बस जाए तो ऐसी परिस्थिति में वह लोग भी आपस में समझौते कर लेते हैं कि यदि हम में से कोई संपत्ति बेचता है तो आपस में ही संपत्ति का क्रय विक्रय कर लें। मुस्लिम विधि में हक शुफ़ा के नियम को उसी परिस्थिति में प्रवर्तन में लाया जा सकता है जब हक़ शुफ़ा का दावा करने वाला उन शर्तों पर जो शर्ते संपत्ति के विक्रय के संव्यवहार में रखी गयी है, संपत्ति खरीदने को तैयार हो। गोविंद दयाल बनाम इनायतुल्लाह के वाद में न्यायमूर्ति महमूद के अवलोकन के अनुसार विधि में शुफ़ा किसी अचल संपत्ति के शांतिपूर्ण उपभोग के लिए इस अचल संपत्ति के स्वामी का अपनी संपत्ति के अलावा किसी अन्य अचल संपत्ति पर उन्हीं निर्बंधनो पर जिन पर दूसरे व्यक्ति को बेची गई हो क्रेता को प्रतिस्थापित करके मालिकाना कब्जा पाने का अधिकार है

हक शुफ़ा का औचित्य हक शुफ़ा के अधिकार के दो औचित्य हैं

1) शुफ़ा की विधि उन सुविधाओं और कठिनाइयों को रोकती है जो कि किसी अजनबी द्वारा सह स्वामी या पड़ोसी के रूप में आगमन से परिवारों को उत्पन्न हो सकती है।

2) उत्तराधिकार की मुस्लिम विधि पारिवारिक संपत्ति का विखंडन करने वाली प्रकृति की है और शुफ़ा विधि इसे काफी रोकती है।

 शुफ़ा का अधिकार कब उत्पन्न होता है विक्रय होने पर शुफ़ा का अधिकार उत्पन्न होता है। कोई भी संपत्ति जो शुफ़ा की विषय वस्तु है, उसका विक्रय होने के उपरांत ही शुफ़ा का अधिकार उत्पन्न होता है और ऐसी परिस्थिति में ही कोई शुफ़ा का अधिकार रखने वाला व्यक्ति शुफ़ा का दावा कर सकता है। जिस परिस्थिति में शुफ़ा से संबंधित वस्तु का विक्रय कर दिया गया है। केवल विक्रय की परिस्थिति में ही हक शुफ़ा का अधिकार उत्पन्न होगा किसी अन्य परिस्थिति में नहीं हक़ शुफ़ा से संबंधित कोई विषय वस्तु का यदि विक्रय किया जाता है तो ही ऐसी परिस्थिति में हक शुफ़ा का दावा किया जा सकता है। इस परिस्थिति के अलावा किसी भी अन्य परिस्थिति में हक शुफ़ा का दावा नहीं किया जाएगा। यदि संपत्ति का स्वामी निम्न परिस्थिति में संपत्ति का अंतरण करता है तो ऐसी परिस्थिति में शुफ़ा का दावा उत्पन्न नहीं होगा। दान (हिबा) सदका वक़्फ़ उत्तराधिकार वसीयत पट्टा (चाहे स्थाई हो) बंधक चाहे वह सशर्त विक्रय के रूप में ही हो किंतु इस स्थिति में विक्रय होने पर शुफ़ा का उदय होता है। विक्रय कब पूर्ण होता है हक़ शुफ़ा संबंधी नियमों में विक्रय का होना महत्वपूर्ण है। विक्रय संबंधी मुस्लिम विधि भारत वर्ष में लागू नहीं होती है। विक्रय संपत्ति अंतरण अधिनियम 1882 के द्वारा निर्मित होता है। इस अधिनियम की धारा 54 यह उपबंधित करती है कि ₹100 अधिक मूल्य की अचल संपत्ति का अंतरण रजिस्ट्रेशन के पूर्व पूर्ण नहीं होगा अर्थात किसी संपत्ति का रजिस्ट्रेशन हो जाने पर उसका विक्रय मान लिया जाता है। राधाकिशन लक्ष्मीनारायण बनाम श्रीधर के वाद में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि जहां अंतरण पर संपत्ति अंतरण अधिनियम लागू हो वहां संपत्ति का अंतरण उसी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार होगा तथा मुस्लिम विधि या कोई अन्य व्यक्तिगत विधि अधिनियम पर अधिमान नहीं हो सकती। अतः जब तक की अचल संपत्ति का स्वामित्व संपत्ति अंतरण अधिनियम के अनुसार क्रेता को अंतरित ना हो जाए तब तक शुफ़ा के अधिकार का प्रवर्तन का प्रश्न नहीं उठता है। शुफ़ा का दावा कौन कर सकता है मुस्लिम विधि में स्पष्ट किया गया है कि शुफ़ा का दावा किन व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है। ऐसा दावा करने वाले तीन व्यक्तियों को मुस्लिम विधि के अंतर्गत बताया गया है जो निम्न हैं

- शफ़ी ए शरीक़ (सह अंशधारी)

 शफी ए शरीक का तात्पर्य होता है, संपत्ति में सह अंशधारी व्यक्ति जो सामान्य पूर्वज की संपत्तियों को उत्तराधिकार में प्राप्त करते है। ऐसी संपत्ति में सह अंशधारी होते हैं। यदि कोई सह अंशधारी संपत्ति को बेचता है तो

- दूसरा सह अंशधारी ऐसी संपत्ति पर शुफ़ा के अधिकार का दावा कर सकता है और एक से अधिक सह अंशधारी संयुक्त रूप से दवा कर सकते हैं। पैगंबर साहब की तालीम के मुताबिक किसी भी व्यक्ति को संपत्ति में सह अंशधारी है उसे ही प्रथम रूप से संपत्ति को बेचा जाना चाहिए।

- शफ़ी ए ख़लीत यदि कोई व्यक्ति सुखाधिकार का अधिकार रखता है तो ऐसी संपत्ति पर शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होता है। **लादूराम बनाम कल्याण सहाय ए आर आई 1963 राजस्थान 195** के मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय ने अवलोकन किया है कि शफ़ी ए ख़लीत खरीद के रूप में शुफ़ा के अधिकार का दावा प्रकाश और हवा के आधार पर नहीं किया जा सकता और ऐसा अधिकार केवल मार्ग और जल के सुख अधिकार तक ही सीमित है। यदि किसी व्यक्ति को किसी संपत्ति के मार्ग या जल से संबंधित है तो ही शफी ए ख़लीत का दवा कर सकता है। शफी ए ज़ार शफ़ी ए जार का तात्पर्य होता है कि ऐसा व्यक्ति जो मिली हुई अचल संपत्ति का स्वामी हो, परंतु मिली अचल संपत्ति का किराएदार या ऐसा व्यक्ति जो की बिना वैध अधिकार के ऐसी संपत्ति पर कब्जा हो शफ़ी ए ज़ार की श्रेणी में नहीं आता। वक़्फ़ संपत्ति का मुतावली शुफा का दावा नहीं कर सकता क्योंकि वह वक़्फ़ संपत्ति का स्वामी नहीं होता है। प्रथम श्रेणी के दावेदार रहते हुए दूसरी श्रेणी के दावेदारों को अपवर्जित करते हैं। और दूसरी श्रेणी के अग्रक्रेता तीसरी श्रेणी के दावेदारों को अपवर्जित करते है। परंतु विधि किसी एक श्रेणी के दावेदारों के बीच आपस में कोई ऐसी असमानता नहीं देती है। वह सभी समान रूप से शुफ़ा का दावा कर सकते हैं। शिया विधि के अंतर्गत केवल शफ़ी ए शरीक ही शुफ़ा के अधिकार का दावा कर सकते है, और वह भी तब जब दो से अधिक दावेदार न हो। हक शुफ़ा में संप्रदाय और धर्म का भेद हक़ शुफ़ा का सिद्धांत और यह विधि एक मुस्लिम विधि है। इस विधि को मानने के लिए केवल मुस्लिम धर्म के लोग बाध्य हैं और शुफ़ा का दावा भी केवल मुस्लिम ही कर सकता है। हक शुफ़ा का दावा उस परिस्थिति में हो सकता है, जिस परिस्थिति में दोनों पक्षकार मुस्लिम हो और मुस्लिम ही नहीं दोनों पक्षकारों का सुन्नी होना भी नितांत आवश्यक है। केवल शफ़ी ए ज़ार के अंतर्गत दावा शिया और सुन्नी दोनो पर समान रूप से किया जा सकता है। भारतीय संविधान के अंतर्गत शुफ़ा की संवैधानिक वैधता संविधान में शुफ़ा के अधिकार को मुस्लिम पर्सनल लॉ में मान्यता प्राप्त है। दो मुसलमानों को आपस में शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होता है, परंतु शफ़ी ए ख़लीत और शफ़ी ए ज़ार गैरसंवैधानिक घोषित कर दिया गया। अर्थात अब पड़ोसी और किसी मिली हुई अचल संपत्ति वाले शुफ़ा का दावा नहीं कर सकते। कुछ कंडीशन में ही यह दावा स्वीकार है। रज्जाक बनाम इब्राहिम के मुकदमे में शफ़ी ए ख़लीत के आधार पर शुफ़ा के दावे को गैर संवैधानिक बताया गया है। कोई भी व्यक्ति अब इस आधार पर दावा नहीं कर सकता के संपत्ति उसके मोहल्ले में है और वह संपत्ति में हित रखता है तो संपत्ति को खरीदने का अधिकार रखता है। इस आधार पर अब हक शुफ़ा का दावा नहीं किया जा सकता। अब केवल सह अंशधारी ही किसी संपत्ति में हक शुफ़ा का दावा कर सकते हैं तथा हक शुफ़ा के दावे को सीमित कर दिया गया है। अब कोई मुस्लिम परिवार में यदि कोई संपत्ति है और वह विरासत की संपत्ति है उसमें अलग-अलग सह अंशधारी हैं तो ऐसी परिस्थिति में यदि कोई सह अंशधारी किसी अन्य व्यक्ति को अपना अंश बेच कर चला जाता है तो बाकी के सभी उस बेचने वाले के विरुद्ध शुफ़ा का दावा ला कर सकते हैं

**हिबा/ Gift**

मुस्लिम लॉ में कोई भी मुस्लिम व्यक्ति अपनी संपत्ति का एक तिहाई हिस्सा ही वसीयत कर सकता है। ऐसा हिस्सा वह किसी बाहरी व्यक्ति को वसीयत कर सकता है, जो उत्तराधिकारी शरीयत द्वारा तय किए गए हैं, उन्हें वसीयत अन्य उत्तराधिकारियों की सहमति द्वारा ही की जा सकती है, परंतु मुस्लिम लॉ में हिबा नाम की एक व्यवस्था रखी गई है, जिसे दान या गिफ्ट कहा जाता है। मुस्लिम लॉ में संपत्ति को हिबा के माध्यम से दान किया जा सकता है।

 हिबा क्या है- हिबा, दान और गिफ्ट का ही एक रूप है जिसमें कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति को किसी अन्य को दान करता है। कोई भी व्यक्ति अपने द्वारा अर्जित की गयी संपत्ति को किसी अन्य को जितनी चाहे उतनी हिबा कर सकता है। एक मुसलमान व्यक्ति को अपनी संपत्ति को हिबा करने के अनियंत्रित अधिकार दिए गए हैं।

**हिबा की परिभाषा** देते हुए मुल्ला ने कहा है कि- हिबा असल में संपत्ति का हस्तांतरण है। मुल्ला की परिभाषा से मालूम होता है कि वे केवल हिबा को एक संपत्ति का हस्तांतरण बता रहे हैं। हिबा में किसी प्रकार का कोई प्रतिफल नहीं होता है। **जीवित दशा में हिबा**- वसीयत के द्वारा हिबा- कोई भी मुसलमान अपने जीवन काल में अपनी संपूर्ण संपत्ति हिबा में दे सकता है और इस संबंध में उसके ऊपर मुस्लिम विधि का कोई भी प्रतिबंध नहीं है, लेकिन वसीयत के द्वारा अंतरण में एक तिहाई का प्रतिबंध लगा दिया गया है, क्योंकि वसीयत के द्वारा हिबा वसीयतकर्ता के मृत्यु के उपरांत प्रभावी होता है। वी पी कथेसा उम्मा बनाम नारायन्नाथ कुम्हासा के मामले में निर्णय देते हुए माननीय न्यायधीश जस्टिस हिदायतुल्लाह ने हिबा की परिभाषा करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि हिबा किसी विशिष्ट वस्तु पर बिना एवज के अधिकार प्रदान करने को कहा जाता है। हिबा शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है किसी वस्तु का दान, जिससे दानग्राहीता को लाभ हो। इस प्रकार अंतरण तुरंत एवं पूर्ण 'तमलिक उल एन' होता है।

 हिबा के आवश्यक तत्व-

 मुस्लिम विधि में हिबा अवधारणा के कुछ आवश्यक तत्व निकल कर सामने आते हैं। हिबा में दो पक्षकार होते हैं। एक वह जो हिबा करता है और दूसरा वह जो हिबा को स्वीकार करता है। दाता और उपहारग्रहिता। कौन व्यक्ति है जो हिबा कर सकता है- हिबा करने वाले व्यक्ति को दाता कहा जाता है तथा दाता की कुछ अर्हताएं हैं, मुस्लिम विधि में दी गई हैं जो कि निम्न हैं

- वयस्कता- मुस्लिम विधि में 15 वर्ष को युवावस्था माना गया है, परंतु भारतीय वयस्कता अधिनियम के कारण 18 वर्ष की आयु को ही वयस्कता का प्रमाण माना गया है। कोई भी वह मुसलमान व्यक्ति जो 18 वर्ष की आयु पूरी कर चुका है, वह हिबा कर सकता है।

स्वास्थ्यचित- कोई भी स्वस्थ चित्त मुसलमान व्यक्ति हिबा कर सकता है। वह ऐसे समय हिबा कर सकता है जब वह स्वास्थ्यचित का हो।

 स्वतंत्रता- उपहारदाता की स्वतंत्र इच्छा से दिया जाए तब ही वैध होगा। दबाव, असम्यक असर या मिथ्या व्यापदेशन से प्रभावित उपहार मान्य नहीं होगा। **महबूब खां बनाम अब्दुल रहीम ए आई आर 1964** के मामले में यह बात कही गयी है कि कोई भी हिबा पूर्ण रूप से स्वतंत्र होना चाहिए।

**अंतरण की विषय वस्तु का स्वामित्व-** कोई व्यक्ति केवल उसी संपत्ति को उपहार में दे सकता है, जिसका वह स्वामी हो। ऐसी संपत्ति जो किसी दूसरे के स्वामित्व में है उपहार की वस्तु नहीं बन सकती है। किसी मकान का किराएदार उस किराए के मकान का दान नहीं कर सकता है। हिबा की विषय वस्तु- सामान सिद्धांत यह है कि उस वस्तु का दान हो सकता है- जिस पर स्वामित्व संपत्ति के अधिकार का प्रयोग किया जा सके। जिस पर कब्जा किया जा सके। जिसका अस्तित्व किसी विशिष्ट वस्तु निष्पादन अधिकार के रूप में हो। जो माल शब्द के भीतर आती हो। इस्लाम में चल और अचल संपत्ति जैसा कोई विभेद नहीं रखा गया है सभी प्रकार की संपत्तियों को वहां माल कहा जाता है।

**हिबा और वसीयत में अंतर**- हिबा और वसीयत में सबसे मूल अंतर यह है कि हिबा कोई भी मुसलमान व्यक्ति अनियंत्रित अधिकार के साथ कर सकता है, परंतु वसीयत केवल एक तिहाई संपत्ति के लिए कर सकता है। हिबा जीवित रहते करना होता है और हिबा के जो परिणाम आते हैं वह जीवित रहते ही हैं। वसीयत में वसीयत के परिणाम वसीयत करने वाले की मृत्यु के बाद आते हैं जैसे वसीयत को तभी निष्पादित करवाया जा सकता है, जब वसीयत करने वाला मर गया हो जबकि हिबा को तुरंत प्रभाव में दिया जाता है। हिबा में तुरंत संपत्ति का अंतरण कर दिया जाता है उसकी उसका परिदान कर दिया जाता है। मौखिक भी हो सकता है हिबा- मुस्लिम विधि में हिबा के प्रारूप में हिबा को मौखिक भी बताया है। कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति का हिबा मौखिक भी कर सकता है। जी मुज़ीर अहमद बनाम मोहम्मद जफरउल्लाह के वाद में इस बात को स्वीकार किया गया है कि मौखिक हिबा मुस्लिम विधि का अहम हिस्सा है। कोई भी मुसलमान व्यक्ति अपनी संपत्ति को मौखिक तौर पर भी हिबा कर सकता है। कुछ मुस्लिम धर्म गुरुओं के अनुसार धार्मिक हिबा मौखिक किया जा सकता है परंतु सेकुलर हिबा का रजिस्ट्रेशन आवश्यक है। सेकुलर हिबा उसे कहा जाता है जैसे एक व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को कोई भूमि का टुकड़ा दान कर देना और धार्मिक हिबा उसे कहा जाता है जिसमें एक व्यक्ति अपने स्वामित्व की कोई संपत्ति किसी धार्मिक कामकाज में दान कर रहा है। इंडियन रजिस्ट्रेशन एक्ट 1908 में हिबा को रजिस्ट्रेशन से छूट दी गयी है। **कमरुन्निसा बीबी बना हुसैनी बीबी** के मुकदमे में इस बात को स्वीकार किया गया है कि हिबा में रजिस्ट्रेशन की आवश्यकता नहीं है, परंतु बाद में अचल संपत्ति के हिबा में हस्तांतरण का रजिस्ट्रेशन आवश्यक कर दिया गया। हिबा करने का क्रम- मुस्लिम विधि में हिबा करने की क्रिया में एक व्यवस्थित क्रम दिया गया है या फिर इसे भी हिबा के आवश्यक तत्व माने जा सकते हैं, जिसमें निम्न क्रम है

**- हिबा की घोषणा**- दाता का हिबा करने का स्पष्ट आशय होना चाहिए। जब हिबा करने वाले की ओर से वास्तविक या सद्भावनापूर्ण आशय है न हो तो हिबा शून्य माना जाएगा। यह बात वाटसन एंड कंपनी बनाम रामचंद्र दत्त के मामले में कही गयी है। **महबूब साहब बनाम सैयद इस्माइल** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा है कि 'मुस्लिम विधि द्वारा किए गए दान का लिखित होना और फलस्वरुप उसका पंजीकरण होना आवश्यक नहीं है। वैध दान के लिए दान करता द्वारा घोषणा दानग्रहिता द्वारा या उसके नाम पर दान को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से स्वीकार किया जाना, कब्जा देना आवश्यक है।

 दानग्रहिता संपत्ति का कब्जा वास्तव में यहां पर लिखित रूप में ग्रहण कर सकता है यदि उक्त आवश्यक तत्व सिद्ध हो जाते हैं तो दान वैध होगा। हिबा की स्वीकृति या उसे कबूल किया जाना- यह हिबा के क्रम में दूसरा क्रम माना जाता है। **कमरुन्निसा बनाम हुसैनी बीबी** के वाद में दानग्रहीता द्वारा या उसकी ओर से हिबा की स्वीकृति होना आवश्यक है। जहां किसी पिता या अन्य संरक्षक ने अपने पुत्र या किसी प्रतिपाल्य के पक्ष में दान किया हो वहां स्वीकृति आवश्यक नहीं है। यह बात ऊपर वर्णित मुकदमे में कही गयी है। यदि दान की घोषणा तथा स्वीकृति शब्दों में ना किए जाएं परंतु पक्षकारों के आचरण से स्पष्ट हो तो भी यही बाकी मान्यता के लिए पर्याप्त होता है। हिबा का कबूल किया जाना नितांत आवश्यक होता है यदि हिबा कबूल नहीं किया जाता है तो वह शून्य होगा।

**कब्जे का परिदान-** यह हिबा का महत्वपूर्ण पक्ष है, जिसमें हिबा की जाने वाली संपत्ति का परिदान आवश्यक होता है। यह हिबा की मान्यता के लिए तीसरा आवश्यक तत्व है। यदि हिबा करते समय उसका कब्जा नहीं दिया गया है तो हिबा मान्य नहीं होगा। इस स्थान पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि हिबा संबंधी मुस्लिम विधि के अंतर्गत कब्जा शब्द का अर्थ केवल ऐसा कब्जा है जिसे की विषय वस्तु की प्रकृति के अनुसार संभव हो। इस प्रकार कब्जे के परिदान की वास्तविक परीक्षा यह देखने में है कि दाता या दानग्रहिता में से कौन दान की संपत्ति का लाभ उठाता है। यदि दाता लाभ उठाता है तो कब्जे का अंतरण नहीं हुआ यदि दानग्रहीता ऐसा लाभ उठाता है तो उसका अंतरण हो गया और हिबा पूर्ण हो गया। यहां पर एक अपवाद है और मुस्लिम विधि में छूट दी गयी है कि नजदीकी नातेदारों में यदि कोई हिबा किया जाता है तो संपत्ति का परिधान आवश्यक नहीं है। जैसे कोई मां अपने पुत्र को हिबा करती है और मां वह हिबा करने वाली वस्तु का उपयोग भी कर रही है, ऐसी परिस्थिति में हिबा पूर्ण माना जाएगा क्योंकि दोनों साथ ही रहते हैं।

**हिबा का रद्द किया जाना (Revocation**)- मुस्लिम विधि में सभी स्वेच्छा से किए गए संव्यवहार प्रतिसंहरणीय होते है। सुन्नी हनफी विधि में हिबा को रद्द किया जा सकता है जबकि पैगंबर मोहम्मद साहब की परंपरा के कारण इसे घृणित काम माना गया है। कोई भी दान देखकर वापस लिया जाना पैगंबर मोहम्मद साहब की नजर में अत्यंत घृणित काम है। शिया विधि में दान को रद्द करना घृणित नहीं माना जाता है और घोषणा मात्र से दाता दान को वापस ले सकता है या दान को निरस्त कर सकता है। हनफ़ी सुन्नी विधि के अनुसार एक दान को न्यायालय द्वारा निरस्त किया जा सकता है। हनफी विधि केवल घोषणा के आधार पर दान को निरस्त करने की आज्ञा नहीं देती है। वह इसमें न्यायालय के हस्तक्षेप को महत्वपूर्ण मानती है।

**परिदान के पहले हिबा को रद्द करना-** परिदान के पहले कभी भी हिबा को रद्द किया जा सकता है, क्योंकि अभी हिबा पूर्ण ही नहीं हुआ है। परिदान होने के बाद ही हिबा पूर्ण होता है।

**कब्जे के परिदान के बाद**- कब्जे के परिधान के बाद भी दाता को हिबा के प्रतिसंहरण का अधिकार होता है। केवल इस अंतर के साथ कि उस स्थिति में उसे दान ग्रहिता की सहमति या न्यायालय में यथा विधि डिक्री प्राप्त करनी होगी। न्यायालय सिवाय निम्नलिखित अवस्थाओं के डिक्री प्रदान कर देगा कुछ दशाएं ऐसी है जिसमें हिबा को रद्द नहीं किया जा सकता है वह निम्न में हैं- जब दाता की मृत्यु हो गई हो। जब दानग्रहिता की मृत्यु हो गई हो। जब दानग्रहिता का दाता से रिश्ता निषिद्ध आसक्ति के भीतर हो जैसे भाई और बहन। जब दाता और दानग्रहिता का वैवाहिक संबंध हो जैसे पति और पत्नी के रूप में। जब दानग्रहिता ने विषय वस्तु का विक्रय, हिबा या अन्य रूप में अंतरण कर दिया हो। जब विषय वस्तु खो गयी हो नष्ट हो गयी हो या उसमें ऐसा परिवर्तन हो गया हो कि उसकी पहचान ना हो सके। जब विषय वस्तु के मूल्य में वृद्धि हो और वह वस्तु से अलग न की जा सके।

**जब हिबा 'सदका' हो**। जब बदले में कोई चीज स्वीकार कर ली गयी हो। हिबा अवस्थाओं से मालूम होता है कि कोई भी दान करने वाला व्यक्ति केवल स्वयं ही दान दी गयी वस्तु को प्राप्त कर सकता है और दान को रद्द कर सकता है परंतु उसमें भी अनेक विकृतियां होती है।

**वसीयत / Will**

**मुस्लिम विधि** के अंतर्गत पुरुष और स्त्री दोनों **वसीयत** बना सकते हैं। एक पर्दानशीं महिला भी **वसीयत** बना सकती है। लेकिन एक मुसलमान अपनी संपत्ति का एक तिहाई भाग से अधिक की **वसीयत** नही कर सकता है। शरीयत कानून के अनुसार एक मुसलमान जो स्वस्थ मस्तिष्क का हो और 18 वर्ष या अधिक का हो **वसीयत** बना सकता है।

मुस्लिम विधि में वसीयत जैसा कोई विशेष प्रावधान तो नहीं है और एक मुसलमान व्यक्ति को अपने द्वारा अर्जित संपत्ति को शरई तौर पर बंटवारा करने का आदेश है। शरीयत में इस विषय पर बल दिया गया है कि एक मुसलमान व्यक्ति अपने द्वारा अर्जित संपत्ति को वसीयत करने के बजाए उस संपत्ति को शरीयत के अनुसार बांटे। उसे अपनी संपत्ति को अपनी इच्छा के अनुसार बांटने का अधिकार नहीं है। शरीयत में उन व्यक्तियों को बताया है जिन्हें संपत्ति का उत्तराधिकार मिलता है। उनमें विशेष रुप से व्यक्ति के पति पत्नी माता पिता बच्चे भाई बहन है। प्रथम हक संतानों का ही रखा गया है परंतु मुस्लिम लॉ में भी एक तिहाई संपत्ति को वसीयत किया जा सकता है। शेष संपत्ति को शरीयत के अनुसार ही बांटा जाए। भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925 में वसीयत संबंधी प्रावधानों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। हालांकि अधिनियम के अंतर्गत उन्हीं व्यक्तियों की संपत्ति का उत्तराधिकार होता है जिन व्यक्तियों पर पर्सनल लॉ के नियम लागू नहीं होते। विशेष विवाह अधिनियम के अंतर्गत विवाह किए जाने पर संपत्ति का उत्तराधिकार इस अधिनियम के अनुसार होता है। धर्म छोड़ने की आधिकारिक घोषणा पर भी उत्तराधिकार इस अधिनियम के अंतर्गत होता है। छल, कपट, मिथ्या और असम्यक असर इत्यादि से प्राप्त की गई वसीयत को चुनौती दी जा सकती है। मुकदमेबाजी से बचने के लिए वसीयत को रजिस्ट्रेशन करवाया जाता है।

वसीयत अर्थात इच्छा पत्र एक मुस्लिम  द्वारा अपनी संपत्ति सम्बन्धी बंदोबस्त किये जाने के इरादे की कानूनी घोषणा है जो उसकी मृत्यु के बाद प्रभावशील होती हैऔर इस दस्तावेज को कानूनी भाषा में वसीयत कहा जाता है।

**वसीयत करने का हक़दार कौन-**

[१] स्वस्थचित्त

[२] वयस्क [भारतीय वयस्कता अधिनियम १८७५ के अंतर्गत ]

[३] मुस्लिम

**कैसी हो वसीयत -**

वसीयत लिखित व् मौखिक दोनों तरह की हो सकती है।

**वसीयत की आवश्यकता -**

[अ] वसीयतकर्ता वसीयत करने के लिए सक्षम होना चाहिए।

[ब] वसीयतदार वसीयत में प्राप्त हक़ को पाने को सक्षम हो।

[स] वसीयत की विषयवस्तु मान्य हो।

[द ]परिसीमा तक हो।

**वसीयतकर्ता के लिए आवश्यकताएं -**

[१] भारतीय वयस्कता अधिनियम १८७५ की धारा ३ के अनुसार वयस्कता की उम्र १८ वर्ष हो। न्यायालयी संरक्षक हो तब वसीयतकर्ता की उम्र २१ वर्ष हो।

[२] स्वस्थचित्त होना ज़रूरी है।

[३] वसीयतकर्ता वसीयत किये जाते समय मुस्लिम होना चाहिए किन्तु इसमें भी मुस्लिम विधि कहती है कि यदि वसीयतकर्ता मुसलमान ने वसीयत करने के बाद धर्म त्याग दिया है और वह मरते समय मुसलमान न हो तब ऐसी वसीयत -

[अ] मलिकी विधि में अमान्य है।

[ब] हनफ़ी विधि में मान्य होगी।

**और जब वसीयत करने वाला आत्महत्या कर ले तब प्रभाव -**

[अ] सुन्नी विधि में मान्य है।

[ब] शिया विधि में अमान्य है।

**वसीयतदार -**

 वसीयत से विषयवस्तु पाने वाले को वसीयतदार कहते है। कोई भी सक्षम वसीयतदार हो सकता है। रोगी ,स्त्री ,पुरुष इसमें से प्रत्येक सक्षम है।

**वसीयत की परिसीमा -**

[१] कोई भी मुसलमान अपनी कुल संपत्ति के एक -तिहाई से अधिक की वसीयत नहीं कर सकेगा।

[२] वह अपने उत्तराधिकारियों को वसीयत नहीं कर सकेगा।

[३] किसी इस्लाम विरुद्ध प्रयोजन के लिए वसीयत न कर सकेगा।

\*किसी ऐसे व्यक्ति को वसीयत जो मुसलमान न हो पूर्णतः मान्य है।

\*यदि वसीयत दानार्थ उद्देश्य के लिए की गयी है पूर्णतः मान्य है।

\*हत्यारे को की गयी वसीयत

[१] शिया विधि में यदि हत्यारे को वसीयत की गयी है और हत्यारे ने जिसके पक्ष में वसीयत की गयी है ने हत्या आशय रहित की है तो मान्य है और यदि उसने आशय सहित हत्या की है तो वह वसीयत अमान्य है।

[२] सुन्नी विधि में हत्यारे के पक्ष में यदि कोई वसीयत की गयी है और हत्यारे ने वह हत्या भले ही आशय सहित की हो या आशय रहित की हो ,वसीयत हर हाल में अमान्य है।

\*अजन्मे को की गयी वसीयत के मामले में -

[१] शिया विधि में यदि अजन्मा जिसके पक्ष में वसीयत की गयी है वह वसीयतकर्ता की मृत्यु के समय जीवित है तब इसे मान्य समझा जायेगा।

[२] सुन्नी विधि में जिस अजन्मे के पक्ष में वसीयत की गयी है और वह अजन्मा वसीयत करने के दिनांक से ६ मास के भीतर जन्म ले ले तब वह वसीयत अमान्य नहीं होगी।

**जनकता (Parentage)** से तात्पर्य माता-पिता और बच्चों के बीच सम्बन्ध से है। मातृत्व माँ और सन्तान का विधिक सम्बन्ध है और पितृत्व पिता और सन्तान का विधिक सम्बन्ध है। इन विधिक सम्बन्धों से कुछ अधिकार और कर्तव्य जुड़े हुए हैं, जैसे-उत्तराधिकार (विरासत) के पारस्परिक अधिकार, भरण-पोषण और संरक्षकता।

“जब एक व्यक्ति कानून की दृष्टि में दूसरे का पिता या माता माना जाता है तव उसे दूसरे व्यक्ति का पितृत्व या मातृत्व पहले व्यक्ति में सिद्ध माना जाता है।” – तैय्यबजी

**(क) मातृत्व कैसे स्थापित होता है** - सुन्नी विधि के अन्तर्गत बच्चे का मातृत्व उस स्त्री में स्थापित होता है जो उसे जन्म देती है, चाहे जन्म वैध सम्भोग का परिणाम हो या न हो, अर्थात् चाहे बच्चे का जन्म विवाह से हुआ हो या परपुरुषगमन का परिणाम हो। परन्तु शिया विधि के अन्तर्गत जन्म मातृत्व स्थापित करने के लिये पर्याप्त नहीं है। यह साबित करना, जरूरी है कि जन्म वैध विवाह का परिणाम है। इस प्रकार मुस्लिम विधि के अन्तर्गत विवाहबन्धन से उत्पन्न सन्तान धर्मज होती है और माता एवं पिता दोनों से उत्तराधिकार प्राप्त करती है। परपुरुषगमन और निकट सम्बन्ध के कारण वर्जित स्त्री-पुरुषों के वर्जित सम्भोग (incest) से जन्मी सन्तान अधर्मज (Illegitimate) कहलाती है। सुन्नी विधि के अन्तर्गत अधर्मज बच्चे का मातृत्व उस स्त्री में होता है जो उसे जन्म देती है और बच्चा केवल माँ से ही उत्तराधिकार प्राप्त कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री से अवैध सम्भोग (जिना) करता है और परिणामस्वरूप ऐसे सम्भोग से बच्चा पैदा होता है तो ऐसा बच्चा सुन्नी विधि के अनुसार केवल अपनी माँ का ही बच्चा समझा जाता है और वह उससे तथा उसके सम्बन्धियों से ही उत्तराधिकार प्राप्त करने का अधिकारी होगा। परन्तु वह व्यक्ति, जिसके सम्पर्क से वह पैदा हुआ है, वह बच्चे का पिता नहीं माना जायेगा, (क्योंकि पितृत्व केवल वैध विवाह से ही स्थापित हो सकता है) और बच्चा उसकी सम्पत्ति को उत्तराधिकार में नहीं प्राप्त कर सकता। शिया विधि के अन्तर्गत अधर्मज सन्तान का मातृत्व उस स्त्री से भी नहीं माना जाता तो उसे जन्म देती है, न उसका पितृत्व ही उस पिता में होता है जो उसे पैदा करता है। इस प्रकार शिया विधि के अनुसार अधर्मज सन्तान माता-पिता में किसी से भी उत्तराधिकार नहीं प्राप्त कर सकती अर्थात् वह किसी का भी सम्बन्धी नहीं होता।

शास्त्रीय मुस्लिम विधि (Classical Muslim Law) के अधीन किसी पुरुष का उसकी कनीज (दासी) से समागम वैध माना जाता है। ऐसे समागम से उत्पन्न सन्तान औरस सन्तान मानी जाती है। आजकल दास-प्रथा समाप्त हो गई है।

इस प्रकार ‘मातृत्व’ (maternity) बच्चे की वह विधिक स्थिति है जो उसकी माता की सम्पत्ति के उत्तराधिकार और दाय का अवधारण करती है और ‘पितृत्व’ (Paternity) बच्चे की वह विधिक स्थिति है जो उसके पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकार और दाय का अवधारण करती है।

**(ख) पितृत्व कैसे स्थापित होता है**- “किसी बच्चे का पितृत्व केवल उसके पिता और माता के विवाह होने से स्थापित हो सकता है। विवाह मान्य या अनियमित हो, परन्तु उसे शून्य नहीं होना चाहिये।” पितृत्व बच्चे की माता के पति से स्थापित होता है। विल्सन के अनुसार “पितृत्व उस व्यक्ति में स्थापित होता है जो इस बात के प्रमाण या विधिक उपधारणा से पिता कहा जाता है कि बच्चे को उसने एक स्त्री से पैदा किया जो गर्भधारण के समय उसकी वैध पत्नी थी, या सद्भावना से या युक्तिसंगत रूप में ऐसा विश्वास किया जाता था, या उसका विवाह जो मात्र अनियमित था और प्रारम्भ से हो शून्य नहीं था, उस समय वास्तविक पृथक्करण द्वारा समाप्त नहीं हुआ था।”

इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी बच्चे का पितृत्व स्थापित करने के लिये मातापिता के विवाह का प्रत्यक्ष प्रमाण आवश्यक है। प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में कुछ परिस्थितियों में विवाह की उपधारणा की जा सकती है- (1) निरन्तर सम्भोग से, या (2) पिता की अभिस्वीकृति से।

शिया विधि के अनुसार शून्य विवाह की सन्तान के ‘पितृत्व’ और ‘मातृत्व’ दोनों को मान्यता प्राप्त नहीं है। शिया विधि में अवैध सन्तान किसी का सम्बन्धी नहीं होता है। सुन्नी विधि के अन्तर्गत अवैध सन्तान का केवल मातृत्व होता है परन्तु पितृत्व नहीं होता।

**धर्मजत्व (Legitimacy)**

धर्मजत्व का मुख्य आधार विवाह (निकाह) होता है। हबीबुर्रहमान चौधरी बनाम अल्ताफ अली चौधरी के वाद में प्रिवी काउन्सिल की धारणा रही कि-

“मुस्लिम विधि में लड़के को धर्मज होने के लिये किसी पुरुष और उसकी पत्नी या किसी पुरुष और उसकी दासी (slave) का बच्चा होना जरूरी है। कोई अन्य सन्तान व्यभिचार (जिना) की सन्तान होती है और धर्मज नहीं हो सकती। ‘पत्नी’ शब्द आवश्यक रूप में विवाह को इंगित करता है। परन्तु चूंकि विवाह बिना किसी अनुष्ठान के भी हो सकता है, इसलिये किसी विशेष दृष्टान्त में विवाह का अस्तित्व एक खुला प्रश्न होता है। प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त हो सकता है, परन्तु यदि ऐसा प्रमाण न. हो तो परोक्ष (indirect) प्रमाण ही पर्याप्त हो सकता है। परोक्ष प्रमाण की एक रीति लड़के की धर्मजत्व की अभिस्वीकृति है।”

जब बच्चे का पितृत्व स्थापित होता है तो उसकी धर्मजता भी स्थापित है। मुस्लिम विधि में पितृत्व निम्नलिखित दो तरीकों में से किसी एक तरीके से स्थापित होता है और तीसरा कोई अन्य तरीका नहीं है-

(1) नियमित या अनियमित विवाह की अवधि में जन्म (परन्तु जन्म शून्य विवाह के अन्तर्गत न हुआ हो) अथवा (2) कुछ परिस्थितियों में अभिस्वीकृति द्वारा।

गौतम कुन्दू बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य के वाद में याचिकाकर्ता ने एक बच्चे के पितृत्व को चुनौती दी और न्यायालय से यह प्रार्थना की कि वह बच्चे की खूनी जाँच करके यह पता करे कि उसका असली पिता कौन है। उसके अनुसार जब तक यह सिद्ध नहीं हो जाता वह बच्चे के भरण-पोषण देने के लिये उत्तरदायी नहीं है। उसका यह प्रार्थनापत्र निम्नलिखित दो आधारों पर रद्द कर दिया गया-

(1) भारतीय साक्ष्य विधि के अन्तर्गत पितृत्व को असिद्ध करने के बहुत से तरीके हैं।

(2) विधि में यह विनिश्चित है कि पितृत्व का चिकित्सीय परीक्षण निश्चायक नहीं हो सकते।

इस फैसले के विरुद्ध उच्च न्यायालय में पुनर्परीक्षण कराया गया। इसको रद्द करते हुए न्यायालय ने कहा कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 172 यह कहती है कि विवाह के अस्तित्व में रहते हुए यदि कोई बच्चा जन्म लेता है तो यह धर्मजत्व का निश्चायक सबूत होगा। इस तरह यह धारा पितृत्व को सिद्ध करने के लिये रक्त जाँच के विरुद्ध है। उच्चतम न्यायालय ने भी उच्च न्यायालय के इस निर्णय को अपनी सहमति दे दी।

(i) धर्मजत्व-सम्बन्धी मुस्लिम-विधि के विशेष नियम- मुस्लिम विधि के अनुसार धर्मजता की उपधारणा के निम्नलिखित नियम हैं-

1. विवाह के बाद छ: महीने से कम समय के अन्दर जन्मा हुआ बच्चा अधर्मज होता ‘है, यदि पिता उसे अभिस्वीकार न करे।
2. विवाह की तारीख से छ: महीने के बाद जन्मे बच्चे के धर्मज होने की उपधारणा की जाती है, जब तक कि पिता उसे “लिएन” के द्वारा अस्वीकार न कर दे।
3. विवाह-विच्छेद के पश्चात् उत्पन्न बच्चा –

(क) शिया विधि के अन्तर्गत यदि 10 चन्द्रमास के अन्दर उत्पन्न हुआ हो,

(ख) हनफी विधि में यदि 2 चन्द्रवर्षों के भीतर उत्पन्न हुआ हो, और

(ग) शफी और मालिकी विधि में 4 चन्द्रवर्षों के भीतर उत्पन्न हुआ हो तो वह धर्मज होगा।

(ii) भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अन्तर्गत. धर्मजत्व की निश्चायक उपधारणा भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 112 के अनुसार “यह तथ्य, कि किसी व्यक्ति का जन्म उसकी माता और किसी पुरुष के मान्य विवाह के कायम रहने के दौरान हुआ या विवाह-विच्छेद से 280 दिनों के भीतर हुआ, जब माता अविवाहित रही, इस बात का निश्चायक प्रमाण है कि वह उस पुरुष की धर्मज सन्तान है, जब तक कि यह न दर्शाया जा सके कि उसके गर्भ में आने के किसी भी समय विवाह के पक्षकारों की एक-दूसरे तक पहुँच नहीं थी।” धर्मजत्व के सम्बन्ध में मुस्लिम विधि और साक्ष्य अधिनियम में अन्तर- शुद्ध मुस्लिम विधि और साक्ष्य अधिनियम की धारा 112 में निम्नलिखित अन्तर है-

(1) मुस्लिम विधि में विवाह के पश्चात् छ: माह के भीतर उत्पन्न शिशु अधर्मज होता है जब तक कि पिता उस शिशु को अभिस्वीकार न करे। परन्तु भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अन्तर्गत ऐसा शिशु धर्मज है जब तक कि यह न सिद्ध किया जाये कि शिशु के गर्भ में आने के समय विवाह के पक्षकारों को पारस्परिक समागम का कोई अवसर प्राप्त नहीं था।

(2) विवाह से छ: माह के पश्चात् परन्तु विवाह विघटन के 280 दिनों के भीतर उत्पन्न शिशु दोनों ही विधियों के अनुसार धर्मज होगा। लेकिन मुस्लिम विधि के अन्तर्गत लिएन द्वारा इस उपधारणा को रद्द किया जा सकता है और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 112 के अन्तर्गत समागम के अवसर न होने के प्रमाण द्वारा।

(3) विवाह विघटन के 280 दिनों के पश्चात् तथा दो वर्षों के भीतर उत्पन्न शिशु हनफी शाखा के अनुसार धर्मज होगा, परन्तु लिएन के नियम लागू होंगे। सुन्नी विधि के शफी और मालिकी उपशाखा के अनुसार यह काल विवाह-विघटन की तिथि से चार वर्ष का माना जाता है। साक्ष्य विधि के अनुसार विवाह-विच्छेद के 280 दिनों के पश्चात् उत्पन्न शिशु अधर्मज होता है।

साक्ष्य अधिनियम शुद्ध मुस्लिम-विधि के नियम पर अध्यारोही (Superseding)- प्रश्न यह उठता है कि क्या साक्ष्य अधिनियम के अन्तर्गत प्रक्रिया विधि का उपबन्ध मूल विधि के उपबन्धों को निष्प्रभावी कर देता है? इसमें मतभेद है, परन्तु प्रामाणिकता का सन्तुलन साक्ष्य अधिनियम के पक्ष में है। सर डी.एफ. मुल्ला के मत से साक्ष्य अधिनियम के उपबन्ध मुस्लिम-विधि के ग्रन्थ में निहित मूल विधि को निष्प्रभावी कर देते हैं। सिब्त मोहम्मद बनाम मोहम्मद के वाद में इलाहाबाद के उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि उक्त धारा मुस्लिम विधि को निष्प्रभावी कर देती है और मुसलमानों पर लागू होती है। लाहौर उच्च न्यायालय ने इस मत का समर्थन किया है। कनीज बनाम हसन के वाद में अवध नुख्य न्यायालय ने यह निर्णय किया कि धारा 112 मुसलमानों पर लागू होती है। यह धारा मुस्लिम विधि के अनियमित (फासिद) विवाहों पर लागू नहीं हो सकती, क्योंकि इस धारा के अर्थ में ऐसा विवाह मान्य विवाह नहीं है। “जहां एक स्त्री को उसके पति ने विवाह के कुछ ही दिन बाद इस कारण से निकाल दिया था कि वह विवाह के समय गर्भवती थी और यह तथ्य उससे छिपाया गया था तथा तदुपरान्त चार महीने में उस स्त्री ने एक बालक को जन्म दिया, वहाँ यह निर्णित किया गया कि इस मामले में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 112 के अन्तर्गत कोई उपधारणा नहीं की जा सकती, क्योंकि कोई मान्य विवाह नहीं हुआ था।”

के.पी. सक्सेना के अनुसार “धर्मजत्व” की मुस्लिम विधि को अध्यारोही होना चाहिये, क्योंकि यह विधि का सारवान भाग है और ऐसे मामलों पर धारा 112 का प्रयोग उचित नहीं है।

सब देखते हुए प्रमाणिकता का सन्तुलन इस पक्ष में है कि साक्ष्य अधिनियम मुस्लिमविधि के अन्तर्गत मूल विधि पर अध्यारोही है।

**(ग) सम्भावी (Presumptive)** विवाह से धर्मजत्व की उपधारणा- जब कुछ परिस्थितियाँ विवाह की उपधारणा उत्पन्न करती हों तो उस विवाह से उत्पन्न सन्तान के धर्मजत्व को मान्यता उत्पन्न होती है। यदि विवाह और विवाह सम्बन्ध के दौरान बच्चे के जन्म का निष्कर्ष निकलता हो तो न्यायालय अति स्पष्ट और अखण्डनीय विरोधी साक्ष्य के अभाव में धर्मजता की ही उपधारणाकरता है। धर्मजता के विरोध में पक्षकारों के निकट सम्बन्धियों के कथन या उस परिवार की प्रतिष्ठा से अच्छा प्रमाण’ और कोई नहीं होता। मोहम्मद बाकर बनाम सिराजुन्निसा के वाद में प्रिवी काउन्सिल ने यह संप्रेक्षण किया है-

“मुस्लिम माता-पिता के विवाह की वैधता के किसी औपचारिक कार्य के प्रमाण या कम से कम किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के बिना ही सन्तान के धर्मजत्व की उपधारणा करना या उसका अनुमान लगाना उचित हो सकता है।”

हिदायत उल्ला बनाम राहत जान खानम और शमसुन्निसा बनाम राय जान खानम के दूसरे वादों में यह निर्णित किया गया कि माता और बच्चे दोनों का सात से आठ साल तक लगातार सम्बन्ध इसी के अनुसार होता रहा, जो सम्भोग और पुत्र के अनुमान सिद्ध (Putative) पिता की सन्तान होने के उदाहरण के बिना न किया जाता। धर्मजत्व की उपधारण के लिये विवाह का प्रमाण आवश्यक है, इसलिये जब विवाह का कोई साक्ष्य न हो तो उपधारणा मात्र से धर्मजत्व का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

**(घ) धर्मजत्व तथा धर्मजकरण का प्रभेद (Legitimacy and legitimization : Distinction)-** हबीबुर्रहमान चौधरी बनाम अल्ताफ अली चौधरी के वाद में-ह एक यहूदी स्त्री मोजेलेकोहेन का पुत्र था जो बोगरा के नवाब सोमन का पुत्र होने का दावा करता था। उससे अ तथा अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध उत्तराधिकार में भाग पाने का दावा किया। अ मृत नवाब की पुत्री का पुत्र था। हमने शपथपूर्वक कहा कि मोजेज का विवाह नवाब से हुआ था और यदि यह न भी माना जाये तो नवाब ने उसे कई अवसरों पर अपना पुत्र अभिस्वीकार किया था। इस विवाह को उचित स्वीकृति के प्रमाण के अभाव में वाद को खारिज करते हुए प्रिवी काउन्सिल के माननीय न्यायाधीशों ने धर्मजत्व और धर्मजकरण (Legitimization) का अन्तर सष्ट करते हुए कहा कि “धर्मजत्व एक ऐसी स्थिति है जो अस्तित्व रखने वाले कुछ तथ्यों का परिणाम होती है। धर्मजकरण एक कार्यवाही है जो एक ऐसी स्थिति को जन्म देती है जिसका अस्तित्व पहले नहीं था। उचित भाव में मुस्लिम विधि में कोई धर्मजकरण नहीं है। दूसरी पद्धतियों में इसके उदाहरण पाये जा सकते हैं जैसे-हिन्दू विधि में दत्तक ग्रहणा” उसी वाद में यह भी निर्णय किया गया कि “विवाह के तथ्य के एक बार स्थापित हो जाने पर धर्मजत्व की अभिस्वीकृत्ति का कोई प्रभाव नहीं होता।” मुस्लिम विधि के अनुसार किसी पुत्र को धर्मज होने के लिये पति-पत्नी को सन्तान होना जरूरी है। कोई दूसरी सन्तान जिना अर्थात् अवैध सम्बन्ध की सन्तान होता है जो धर्मज नहीं हो सकती। ‘पत्नो’ शब्द आवश्यक रूप में विवाह को इंगित करता है, परन्तु चूँकि विवाह बिना किसी अनुष्ठान (रस्म) के भी हो सकता है, इसलिये किसी विशेष मामले में विवाह का अस्तित्व एक खुला प्रश्न होगा। प्रत्यक्ष साक्ष्य पर्याप्त हो सकता है, परन्तु यदि ऐसा साक्ष्य न हो तो परोक्ष साक्ष्य भी पर्याप्त हो सकता है। परोक्ष साक्ष्य का एक तरीका पुत्र के पक्ष में धर्मजत्व की अभिस्वीकृति हैपरन्तु उने प्रत्यक्षत: असम्भव नहीं होना चाहिये अर्थात् अभिस्वीकृति ऐसी स्थिति में न की जानी चाहिये जब आयु ऐसी हो कि स्वीकर्ता के लिये प्रकृति के यमों के अनुसार अभिस्वीकृति के पात्र का पिता होना असम्भव हो, या जब माँ, जिसका अभिस्वीकृति में जिक्र हो, दूसरे की पत्नी हो या स्वीकर्ता की निषिद्ध आसक्तियों के भीतर हो, जिससे, यह प्रत्यक्ष हो जायेगा कि सन्तन परस्त्रीगमन या निकट सम्बन्ध की निषिद्ध आसक्तियों के भीतर हो, जिससे, यह प्रत्यक्ष हो जायेगा कि सन्शन परस्त्रीगमन या निकट सम्बन्ध के कारण वर्जित सम्भोग (incest) की सन्तान है। अभिस्वीकृति को स्वीकृति का पात्र अस्वीकार कर सकता है। परन्तु यदि इन आपत्तियों में से कोई भी न हो तो अभिस्वीकृति का मूल्य साक्ष्य से अधिक होता है। वह विवाह-की उपधारणा उत्पन्न करती है, जिसका लाभ पत्नी-अभ्यर्थी (Wife claimant) या पुत्र अभ्यर्थी (son-claimant) उठा सकता है।”

भरण-पोषण

मुस्लिम स्त्री (विवाह विच्छेद पर अधिकार संरक्षण) अधिनियम, 1986

धारा- 5   भरणपोषण के संदाय के लिए आदेश- (1) इस अधिनियम के पूर्वगामी उपबंधों या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, जहां मजिस्ट्रेट का यह समाधान हो जाता है कि विच्छिन्न विवाह स्त्री ने पुनर्विवाह नहीं किया है और वह इद्दत की अवधि के पश्चात् अपना भरणपोषण करने में समर्थ नहीं है वहां वह उसके ऐसे नातेदारों को, जो उसकी मृत्यु पर मुस्लिम विधि के अनुसार उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होने के हकदार होंगे, विच्छिन्न विवाह स्त्री की आवश्यकताओं, उसके विवाह के दौरान उसके द्वारा उपभोग किए गए जीवन स्तर और ऐसे नातेदारों के साधनों को ध्यान में रखते हुए, यह निर्देश देते हुए आदेश कर सकेगा कि वे ऐसे युक्तियुक्त और ऋजु भरणपोषण का, जो वह ठीक और उचित अवधारित करे, उसको संदाय करें और ऐसा भरणपोषण ऐसे नातेदारों द्वारा उसी अनुपात में, जिसमें वे उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होंगे और ऐसी अवधियों पर संदत्त किया जाएगा जैसी वह अपने आदेश में विनिर्दिष्ट करे :

परन्तु जहां ऐसी विच्छिन्न विवाह स्त्री की संतान हैं, वहां मजिस्ट्रेट केवल ऐसी संतान को ही भरणपोषण का संदाय करने का आदेश देगा, और ऐसी किसी संतान के भरणपोषण का संदाय करने में असमर्थ होने की दशा में, मजिस्ट्रेट ऐसी विच्छिन्न विवाह स्त्री के माता-पिता को उसके भरणपोषण का संदाय करने का आदेश देगा :

परन्तु यह और कि यदि माता-पिता में से कोई मजिस्ट्रेट द्वारा आदिष्ट भरणपोषण के अपने अंश का संदाय इस आधार पर करने में  असमर्थ है कि उसके पास ऐसा संदाय करने के साधन नहीं हैं, तो मजिस्ट्रेट उसके द्वारा ऐसी असमर्थता का सबूत पेश किए जाने पर यह आदेश कर सकेगा कि मजिस्ट्रेट द्वारा आदिष्ट भरणपोषण में ऐसे नातेदारों का अंश ऐसे अन्य नातेदारों द्वारा जिनके बारे में मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत हो कि उनके पास उसका संदाय करने के साधन हैं, ऐसे अनुपात में संदत्त किया जाए जैसा मजिस्ट्रेट आदेश करना ठीक समझे ।

(2) जहां कोई विच्छिन्न विवाह स्त्री अपना भरणपोषण करने में असमर्थ है और उपधारा (1) में यथावर्णित उसके कोई नातेदार नहीं हैं यह ऐसे नातेदारों अथवा उनमें से किसी के पास मजिस्ट्रेट द्वारा आदिष्ट भरणपोषण का संदाय करने के पर्याप्त साधन नहीं हैं या अन्य नातेदारों के पास उन नातेदारों के अंशों का संदाय करने के साधन नहीं हैं जिनके अंशों का, ऐसे अन्य नातेदारों द्वारा संदाय किए जाने के लिए मजिस्ट्रेट द्वारा उपधारा (1) के दूसरे परन्तुक के अधीन आदेश किया गया है वहां मजिस्ट्रेट, आदेश द्वारा, वक्फ अधिनियम, 1954 (1954 का 29) की धारा 6 के अधीन या किसी राज्य में तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन स्थापित राज्य वक्फ बोर्ड की, जो उस क्षत्र में जिसमें वह स्त्री निवास करती है, कार्य कर रहा हो, यथास्थिति, ऐसे भरणपोषण का संदाय, जो उपधारा (1) के अधीन उसके द्वारा अवधारित किया जाए, या ऐसे नातेदारों के, जो संदाय करने में असमर्थ हैं, अशों का संदाय ऐसी अवधियों पर करने का निदेश दे सकेगा जो वह आदेश में विनिर्दिष्ट करे ।

 5. 1974 के अधिनियम 2 की धारा 125 से धारा 128 तक के उपबंधों द्वारा शासित होने का विकल्प-यदि धारा 3 की उपधारा (2) के अधीन आवेदन की पहली सुनवाई की तारीख को विच्छिन्न विवाह स्त्री और उसका पूर्व पति शपथपत्र या किसी अन्य लिखित घोषणा द्वारा ऐसे प्ररूप में, जो विहित किया जाए, या तो संयुक्त रूप से या पृथक्तः, यह घोषित करते हैं कि वे दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 125 से धारा 128 तक के उपबन्धों द्वारा शासित होना चाहते हैं और वे आवेदन की सुनवाई करने वाले न्यायालय में ऐसा शपथपत्र या घोषणा फाइल करते है, तो मजिस्ट्रेट ऐसे आवेदन को तदनुसार निपटाएगा ।

स्पष्टीकरण-इस धारा के प्रयोजनों के लिए, आवेदन की पहली सुनवाई की तारीख" से वह तारीख अभिप्रेत है जो आवेदन के प्रत्यर्थी की हाजिरी के लिए समन में नियत की गई है ।

पटना हाईकोर्ट ने कहा है कि तलाकशुदा मुस्लिम महिला भरण-पोषण पाने की हकदार है। इद्दत की अवधि (तीन महीने दस दिन) के बाद भी जब तक वह पुनर्विवाह नहीं करती तथा समर्थ नहीं हो जाती तब तक वह अपने पहले पति से भरण-पोषण पाने की हकदार है।ड्ढr ड्ढr न्यायमूर्ति समरन्द्र प्रताप सिंह की एकलपीठ ने मुसर्रत जहां की ओर से दायर आपराधिक पुनरीक्षण अर्जी पर सुनवाई की। मधुबनी के परिवार न्यायालय ने भरण-पोषण अर्जी दायर की तारीख से कारण पृच्छा दायर किए जाने तक भरण-पोषण के लिए एक हजार रुपया प्रति महीने देने का आदेश मुसर्ंत जहां के पति सरफराज अहमद को दिया था। परिवार न्यायालय के आदेश को पुनरीक्षण अर्जी दायर कर हाईकोर्ट में चुनौती दी गई थी। मुसर्रत जहां का कहना था कि उसकी शादी 10 में हुई थी। शादी के दो साल बाद एक पुत्री का जन्म हुआ। शादी के बाद उसकी माता-पिता से दहेज की मांग पूरी नहीं किए जाने के कारण घर से निकाल दिया गया। घर से निकाले जाने के बाद भारतीय दंड संहिता की धारा 4ए के तहत एक मुकदमा दायर भी की। जो लंबित है। भरण-पोषण के लिए अलग से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत एक अर्जी दायर की। मुसर्रत जहां के अनुसार उसका विवाह अभी भी अस्तित्व में है। इस कारण उसे एवं उसकी नाबालिग बच्ची भरण-पोषण पाने की हकदार है।ड्ढr ड्ढr जबकि पति सरफराज अहमद का कहना था कि उसने अपनी पत्नी को 13 अप्रैल 2004 को ही तलाक दे दिया है । ऐसे में इद्दत अवधि के बाद भरण पोषण पाने की हकदार उसकी पत्नी नहीं है। एक ट्रक ड्राइवर होने के कारण उसे तीन हजार रुपए ही प्रति महीने मिलता है। अदालत ने मुस्लिम महिला (तलाक के बाद अधिकारों की सुरक्षा) अधिनियम 1ी धारा 3 एवं 4 का विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा कि मुस्लिम कानून के तहत मुस्लिम महिला विवाह के समय तय हुई दैन मेहर या डोवर की रशि के अलावा पुनर्विवाह करने तक एवं अपना भरण पोषण करने में समर्थ होने तक वह अपने पहले पति से भरण-पोषण पाने की हकदार है। 1े कानून में इद्दत की अवधि के आगे मुस्लिम महिला के अधिकार को समाप्त नहीं करता। कानूनी प्रावधानों के तहत भरण-पोषण पाने के लिए तलाकशुदा मुस्लिम महिला सक्षम न्यायालय में अर्जी दायर कर सकती हैं।

शाहबानो वाद--

तीन तलाक के खिलाफ और भरण-पोषण के लिए कोर्ट का दरवाजा खटखटाने वाली महिला शाहबानो आखिर कौन थीं, क्या था वह चर्चित मामला और यह लड़ाई कैसे अपने मुकाम तक पहुंची?

मध्य प्रदेश के इंदौर शहर निवाली मुस्लिम महिला. नाम शाहबानो. उम्र 62 साल. पांच बच्चों की मां. उसका शौहर मोहम्मद खान उसे 1978 में तलाक दे देता है. शाहबानो अपने शौहर से गुजारा भत्ता पाने के लिए कानूनी लड़ाई लड़ती हैं. मामला निचली अदालत से होते हुए सुप्रीम कोर्ट में पहुंचता है. फैसला सुनाया जाता है. शाहबानो केस जीत जाती हैं.मगर यह सब इतना असानी से नहीं हुआ था. ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने शाहबानो केस में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का पुरजोर विरोध किया था.

---यह पूरा मामला 1978 का था. इंदौर निवासी शाहबानो को उसके पति मोहम्मद खान ने तलाक दे दिया था. मुस्लिम पारिवारिक कानून के अनुसार शौहर बीवी की मर्जी के खिलाफ ऐसा करने को स्वतंत्र था. पांच बच्चों की मां 62 वर्षीय शाहबानो ने गुजारा भत्ता पाने के लिए कानून की शरण ली. मामला निचली अदालत से सुप्रीम कोर्ट में पहुंचा और उस पर सुनवाई हुई. सुप्रीम कोर्ट तक पहुचते मामले को सात साल बीत चुके थे.

23 अप्रैल 1985 को पांच जजों की बेंच ने ऐतिहासिक फैसला सुनाया कि पति को गुज़ारा भत्ता देना ही होगा. कोर्ट न अपराध दंड संहिता की धारा 125 के अंतर्गत निर्णय दिया जो हर किसी पर लागू होता है चाहे वो किसी भी धर्म, जाति या संप्रदाय का हो. शाहबानो के कानूनी तलाक भत्ते पर देशभर में राजनीतिक बवाल मच गया था. उस वक्त सरकार ने ने मुस्लिम महिलाओं को मिलने वाले मुआवजे को निरस्त करते हुए एक साल के भीतर मुस्लिम महिला (तलाक में संरक्षण का अधिकार) अधिनियम, (1986) पारित कर सुप्रीम कोर्ट के फैसले को पलट दिया.

माना जाता है कि ऐसा सरकारने  मुस्लिम धर्मगुरुओं के दबाव में आकर किया था. सरकार के शाहबानो को तलाक देने वाला पति मोहम्मद गुजारा भत्ता के दायित्व से मुक्त हो गया. ऐसे में शाहबानो जिसके भत्ते की मांग को सुप्रीम कोर्ट ने भी मंजूरी दे दी थी, उसे अपने गुजारे के लिए कुछ नहीं मिल सका.

**वक़्फ़ /waqf**

वक़्फ़ का मुस्लिम लॉ के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण स्थान है। वक़्फ़ के माध्यम से भी संपत्तियों का अंतरण किया जाता है। वक़्फ़ का नाम आते ही सर्वप्रथम हमारे मस्तिष्क में खैरात, ज़कात, दान इत्यादि शब्द कौंधने लगते हैं। वक़्फ़ का संबंध दान से तो है परंतु यह दान अल्लाह के वास्ते दिया जाता है। इस दान का लाभ जनसाधारण को होता है, परंतु इस दान का मालिक अल्लाह को बनाया जाता है। आवश्यक नहीं कि लोक वक़्फ़ अर्थात समस्त जनता के लिए ही वक़्फ़ हो, कोई वक़्फ़ निजी कुछ लोगो के लिए भी बनाया जा सकता है। वक़्फ़ का स्थान मुस्लिम विधि में हिबा के स्थान से भिन्न है। हिबा में किसी संपत्ति का मालिक अल्लाह को नहीं बनाया जाता है और हिबा में संपत्ति को प्राप्त करने वाला अपनी इच्छा के अनुसार संपत्ति का कुछ भी कर सकता है, जैसे उसका विक्रय, उपभोग, बंधक इत्यादि परंतु वक़्फ़ के मामले में किसी भी संपत्ति को जब कोई व्यक्ति वक़्फ़ करता है तो अल्लाह के लिए संपत्ति को वक़्फ़ करता है। संपत्ति से लाभ जनसाधारण को होता है परंतु वह जनसाधारण उस संपत्ति का मालिक नहीं होता है। कुरान शरीफ के अंदर यह हुक्म दिया गया है कि जो भी संपत्ति हमारे पास है उसमें एक हिस्सा भिखारियों और गरीबों का भी है। कुरान में स्पष्ट वक़्फ़ का नियम तो नहीं मिलता है परंतु ऐसी बहुत सी आयत हैं जिन आयत को वक़्फ़ से संबंधित माना जाता है। भारत में वक़्फ़ संबंधी नियमों में अबू यूसुफ की वक़्फ़ पर दी गयी अवधारणा को हनफ़ी विधि में मान्य किया गया है। एक जगह पर अबू यूसुफ लिखते हैं कि- " संपत्ति को सर्वशक्तिमान ईश्वर के स्वामित्व के अंतर्गत स्थित कर देना तथा उसके लाभ या उत्पादों को मानव जाति के लाभ के लिए लगाना यह वक़्फ़ है।" वक़्फ़ का स्वामित्व ईश्वर में निहित हो जाता है। वक़्फ़ का अधीक्षक, प्रबंधक या रक्षक मुतवल्ली कहलाता है। वक़्फ़ के आवश्यक तत्व किसी संपत्ति का स्थाई समर्पण मान्य वक़्फ़ का पहला आवश्यक तत्व यह की संपत्ति का स्थाई समर्पण होना चाहिए। कोई भी संपत्ति स्थाई तौर पर ईश्वर को समर्पित कर देना चाहिए। मुस्लिम विधि में धार्मिक पवित्र और खैराती समझे जाने वाले प्रयोजनों के लिए संपत्ति के उपभोग का एक सारवान समर्पण होना वक़्फ़ का एक आवश्यक तत्व है।

अबू यूसुफ के अनुसार किसी भी संपत्ति को वक़्फ़ करने के लिए उस संपत्ति के लिए मुतवल्ली की नियुक्ति आवश्यक नहीं है। केवल वक़्फ़ की नीयत (इरादा) कर लेना भर ही वक़्फ़ को पूर्ण कर देगा। **छेदीलाल मिश्रा बनाम सिविल जज (2007)** का एक मामला है। इस वाद में सुप्रीम कोर्ट ने निर्धारित किया कि यदि एक बार वक़्फ़ उत्पन्न कर दी जाती है तो वह हमेशा वक़्फ़ रहती है। उसकी प्रकृति में मुतवल्ली के लिए अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बदलाव नहीं लाया जा सकता। वक़्फ़ में वाकिफ की स्वामित्व समाप्त होकर ईश्वर में निहित हो जाती है। वक़्फ़ की वैधता पर प्रश्न उठाया जा सकता है यदि यह सिद्ध कर दिया जाए कि वाकिफ़ वक़्फ़ के द्वारा अपने दायित्व से भागना चाहता है। इस्लाम धर्म में अकीदत रखने वाला व्यक्ति केवल इस्लाम धर्म में अकीदत रखने वाला व्यक्ति ही वक़्फ़ कर सकता है। कोई भी ऐसा व्यक्ति इस्लाम धर्म में अकीदत नहीं रखता है और इस्लाम धर्म का अनुसरण करने वाला नहीं है तो उसके द्वारा दिया गया दान, खैरात वक़्फ़ की श्रेणी में नहीं आता है। वक़्फ़ के लिए व्यक्ति का मुसलमान होना आवश्यक है, क्योंकि वक़्फ़ में संपत्ति को ईश्वर के समर्पण में रख दिया जाता है और संपत्ति का स्वामित्व ईश्वर को सौंप दिया जाता है। मुस्लिम विधि द्वारा मान्य किसी प्रयोजन के लिए वक़्फ़ का यह आवश्यक तत्व है कि वह मुस्लिम विधि के अंतर्गत किसी मान्य प्रयोजन के लिए किया जाना चाहिए। कोई भी वक़्फ़ ऐसे काम के लिए नहीं किया जा सकता जिसे इस्लाम द्वारा निषिद्ध किया गया है। वक़्फ़ मान्यकारी अधिनियम 1913 की धारा (3) वक़्फ़ के कुछ प्रावधानों का उल्लेख करती है। इस धारा के अनुसार मुस्लिम विधिवेत्ताओ ने कुछ मद बताए हैं, जिनके प्रायोजन के लिए वक़्फ़ किया जा सकता है। मस्जिद और नमाज के संचालन के लिए इमामो का उपबंध।

अली मुर्तुज़ा का जन्म उत्सव।

इमामबाड़ो की मरम्मत।

ख़ानक़ाहों का संरक्षण।

मस्जिदों में चिराग जलाना।

सार्वजनिक स्थानों और निजी मकानों में कुरानखानी।

 गरीब रिश्तेदारों आश्रितों का भरण पोषण।

फकीरों को दान।

 ईदगाह को दान।

कालेजों को दान और कॉलेजों में शिक्षा देने के लिए अध्यापकों के लिए उपबंध।

 पुल और सराय।

 मक्का, हज करने जाने के लिए गरीबों की मदद।

मोहर्रम के महीने में ताज़िए रखना और मोहर्रम में धार्मिक जुलूस के लिए ऊंट और दुलदुल का उपबंध। संस्थापक और उसके वंश के लोगों का मृत्यु दिवस बनाना। (यहां पर वक़्फ़ के संस्थापक का जिक्र है) कदम शरीफ की रस्म अदा करना।

 मक्का में यात्रियों के लिए कोबेटो यानी कि बिना पैसे के भोजनालय बनवाना या सराय खाने बनवाना। संस्थापक और उसके परिवार के सदस्यों का वार्षिक फ़ातिहा करना।

दीर्घकाल तक लोगों जहां ज़ियारत के लिए जाते हैं, उस पीर की दरगाह पर मजार के लिए संपत्ति लगाना और उर्स करना।

**वक़्फ़ का पंजीयन** भारतीय रजिस्ट्रेशन अधिनियम 1908 के अधीन 100 रुपए या उससे अधिक मूल्य की स्थावर संपत्ति का वक़्फ़ दस्तावेज द्वारा किया जाना चाहिए। मोहम्मद रुस्तम अली बनाम मुश्ताक हुसैन 1920 के मामले में यह तय हुआ है कि कोई भी वक़्फ़ रजिस्ट्रेशन के माध्यम से होना चाहिए। वर्तमान में कोई भी स्थावर संपत्ति का वक़्फ़ पंजीयन के माध्यम से ही होता है, जो पंजीयन तैयार किया जाता है उसे वक़्फ़नामा कहते है। वक़्फ़ कैसे किया जाता है मुस्लिम विधि में वक़्फ़ के अलग-अलग रीतियां बतायी हैं और चार रीति के आधार पर वक़्फ़ किया जाता है।

 1) जीवित लोगों के बीच किसी कार्य के द्वारा।

 2) वसीयत के द्वारा।

3) मृत्यु कारक रोग के पैदा होने पर (मर्ज़ उल मौत)

4) स्मरणातीत उपयोग के द्वारा।

 स्मरणातीत का अर्थ यह है कि कोई स्पष्ट वक़्फ़ नहीं किया गया है परंतु कोई संपत्ति एक लंबे समय से अनिश्चितकाल से वैसे समय से जिसका याद किया जाना संभव नहीं है वक़्फ़ के मान्य प्रयोजन में काम आ रही है। जैसे कोई संपत्ति कब्रिस्तान के रूप में उपयोग लायी जा रही है तो ऐसी संपत्ति को वक़्फ़ मान लिया जाता है। मुतवल्ली मुस्लिम विधि में वक़्फ़ की अवधारणा में मुतवल्ली का महत्वपूर्ण रोल है। वक़्फ़ के प्रबंधक या अधीक्षक को मुतवल्ली कहते है। मुतवल्ली वक़्फ़ का मालिक नहीं होता है वह केवल प्रबंधक या अधीक्षक होता है। मुस्लिम लॉ के अंतर्गत वक़्फ़ की गयी संपत्ति के स्वामित्व का अधिकार मुतवल्ली में नहीं रहता है। मुतवल्ली को वक़्फ़ की संपत्ति में स्वामित्व नहीं प्राप्त होता है, अधीक्षक या प्रबंधक मात्र होता है। उसका वक्फ संपत्ति में कोई लाभ नहीं होता है, वह केवल अल्लाह की रज़ा और मज़हब ए इस्लाम की खिदमत की नीयत से काम करता है। मोहम्मद साहब गफ्फार साहब बनाम दीन गनी मोहम्मद के मामले में निर्धारित हुआ है कि- " यदि कोई व्यक्ति सम्मिलित रूप से मुतवल्ली हो तो विपरीत परस्थिति में हलफनामे में पर्याप्त निर्देश के अभाव में एक मुतवल्ली की मृत्यु होने पर उसका पद शेष मुतवल्ली लेंगे।"

**मुतवल्ली** कौन हो सकता है कोई भी व्यक्ति जो स्वास्थ्य चित्त तथा वयस्क हो और किसी विशेष वक़्फ़ के अंतर्गत आवश्यक कर्तव्यों का पालन कर सकता हो मुतवल्ली नियुक्त किया जा सकता है। मुतवल्ली पद के लिए कोई लिंग या धर्म कोई अवरोध उत्पन्न नहीं करता है। किसी भी धर्म की स्त्री या पुरुष मुतवल्ली नियुक्त किए जा सकते हैं। मुतवल्ली को वक़्फ़ के अंतर्गत विशेष कर्तव्य का पालन करने में समर्थ होना आवश्यक है, जैसे कोई गैर मुस्लिम और स्त्री कुछ धार्मिक कर्तव्य का पालन नहीं कर सकते। सज्जादानशीन, दरगाह में मुजावर का कार्य, मस्जिद में इमाम का कार्य आदि इस प्रायोजना के लिए किसी वक़्फ़ में कोई गैर मुस्लिम या स्त्री मुतवल्ली नहीं नियुक्त किए जा सकते क्योंकि सज्जादानशीन, मुजावर और इस्लाम की शिक्षा में इमाम कोई मर्द ही हो सकता है। भारत में एक विदेशी वक़्फ़ संपत्ति का मुतवल्ली नियुक्त नहीं किया जा सकता। मुतवल्ली की नियुक्ति वक़्फ़ में मुतवल्ली की नियुक्ति महत्वपूर्ण होती है। तात्विक प्रश्न यह है कि ऐसी नियुक्ति किसके द्वारा की जाएगी। मुस्लिम विधि में कुछ ऐसी मद बताई हैं, जिनसे मुतवल्ली की नियुक्ति कर सकते हैं, वे निम्न हैं-

 1) संस्थापक।

 2) संस्थापक की वसीयत के द्वारा।

 3) अपनी मृत्यु शैया पर मुतवल्ली जिसे नियुक्ति दे।

4) न्यायालय।

5) वक़्फ़ बोर्ड।

यह पांच मद मुतवल्ली की नियुक्ति करते हैं। इसमें महत्वपूर्ण बात यह है कि नियुक्ति का सबसे पहला अधिकार पहली मद के व्यक्ति अर्थात संस्थापक को है यदि संस्थापक नहीं है तो फिर दूसरी मद नियुक्ति का अधिकार अर्जित करती है यदि पहली मद का व्यक्ति है तो दूसरी अपवर्जित हो जाती है। वर्तमान में जो प्राचीन वक़्फ़ है, पुराने राजा महाराजाओं के समय की संपत्तियां है, ऐसी सभी संपत्तियों को वक्फ बोर्ड के अधीन कर दिया गया है। जैसे पुराने कब्रिस्तान, पुराने मज़ार, पुरानी दरगाह, पुरानी मस्ज़िद, पुरानी खानकाह इत्यादि ऐसी परिस्थिति में इन संपत्तियों का प्रबंधन वक्फ बोर्ड के हाथ में आ गया है। वक़्फ़ बोर्ड लोकतांत्रिक रूप से चुनी गई सरकार के अधीन नियुक्त किया जाता है तो ऐसे पुराने वक़्फ़ में वक्फ बोर्ड द्वारा ही मुतवल्ली की नियुक्ति की जाती है। वर्तमान में वक्फ अधिनियम 1995 के प्रावधान वक़्फ़ से संबंधित मामलों में लागू हो रहे है। यह अधिनियम भारत में वक़्फ़ संबंधी विधि का सर्वोत्तम अधिनियम है। वर्तमान में इसी अधिनियम के माध्यम से केंद्रीय वक्फ बोर्ड और राज्यों के वक़्फ़ बोर्ड इत्यादि की नियुक्तियां की जा रही है तथा वक़्फ़ की संपत्तियों को सुरक्षित किया जा रहा है।

**उत्तराधिकार / Succession**

उत्तराधिकार के मुस्लिम कानून का गठन इस्लामी कानून के चार स्रोतों से किया है -

1. पवित्र कुरान

2. सुन्ना - अर्थात्, पैगंबर के रिवाज

3. इजमा - अर्थात्, समुदाय के विद्वान पुरुषों की किसी विशेष बिंदु पर निर्णय की सहमति

4. क़िया - अर्थात्, सही और सिर्फ परमेश्वर द्वारा दिए गए अच्छे सिद्धांतों के अनुसार एक अनुरूप कटौती है।

मुस्लिम कानून दो प्रकार के उत्तराधिकारियों, हिस्सेदारों और अवशिष्टों को पहचानता है। हिस्सेदार वे हैं, जो मृतक की संपत्ति में कुछ हिस्सेदारी के हकदार होते हैं और अवशिष्ट हिस्सेदारों द्वारा अपना हिस्सा लेने के बाद छोड़ दिया गया संपत्ति में हिस्सा लेते हैं।

**हिस्सेदार:**

हिस्सेदार संख्या में 12 हैं और निम्नानुसार हैं: (1) पति, (2) पत्नी, (3) बेटी, (4) एक बेटे की बेटी (या बेटे के बेटे या बेटे के बेटे और इसी तरह), (5) पिता, (6) पैतृक दादा, (7) माता, (8) पुरुष रेखा में दादी, (9) पूर्ण बहन (10) सगोत्र बहन (11) गर्भाशय बहन, और (12) गर्भाशय का भाई।

प्रत्येक हिस्सेदार द्वारा लिया जाने वाला हिस्सा कुछ स्थितियों में भिन्न होगा। उदाहरण के लिए, एक ऐसे मामले में जहां दंपत्ति (पति-पत्नी) बिना नज़दीकी वंशज के हैं, पत्नी चौथाई का हिस्सा लेती है, और अन्यथा आठवां हिस्सा लेती है। एक पति (पत्नी की संपत्ति के उत्तराधिकार के मामले में) एक मामले में जहां दंपत्ति बिना नज़दीकी वंशज के होते हैं, एक आधा हिस्सा लेता है और अन्यथा एक चौथाई हिस्सा लेता है। एकमात्र बेटी एक आधा हिस्सा लेती है। जहां मृतक एक से अधिक बेटियों को पीछे छोड़ गया है, सभी बेटियां संयुक्त रूप से दो-तिहाई हिस्सा लेती हैं।

यदि मृतक बेटे और बेटियों के पीछे छोड़ दिया होता, तो बेटियों का हिस्सेदार के रूप में अस्तित्व ख़त्म हो जाता है और उसके बजाय बेटियाँ अवशिष्ट बन जाती है, साथ ही शेष अवशेषों को इस तरह वितरित किया जाता है कि प्रत्येक बेटी को जो मिले, उसका दोगुना प्रत्येक बेटे को मिलना सुनिश्चित हो जाए।

**मुस्लिम कानून के तहत गैर वसीयती और वसीयती उत्तराधिकार:**

गैर वसीयती उत्तराधिकार में, मुस्लिम पर्सनल लॉ (शारत) आवेदन अधिनियम, 1937 को लागू किया जाता है। दूसरी ओर, ऐसे मामले में जहाँ किसी व्यक्ति की वसीयती मृत्यु हो गई है, यानी उस व्यक्ति ने मृत्यु से पहले अपनी वसीयत बना ली थी, वहाँ विरासत मुस्लिम शरीयत कानून (जैसा भी शिया और सुन्नियों के लिए लागू है) के तहत होता है।

ऐसे मामलों में जहां संपत्ति का विषय पश्चिम बंगाल, चेन्नई और बंबई राज्य में स्थित एक अचल संपत्ति है, मुस्लिमों को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 से बाध्य किया जाएगा। यह अपवाद वसीयती उत्तराधिकार के प्रयोजनों के लिए ही है।

**जन्म का अधिकार:**

मुस्लिम कानून में संपत्ति का उत्तराधिकार किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद ही आता है, किसी भी मुस्लिम परिवार में पैदा हुए किसी भी बच्चे को उसके जन्म पर संपत्ति का अधिकार नहीं मिलता है। यदि कोई उत्तराधिकारी पूर्वजों की मृत्यु के बाद भी रहता है, तो वह कानूनी वारिस बन जाता है और इसलिए संपत्ति में हिस्सेदारी का हकदार होता है। हालांकि, अगर स्पष्ट वारिस अपने पूर्वजों की मृत्यु के बाद नहीं बचता है, तो संपत्ति में हिस्सेदारी का कोई भी अधिकार नहीं होगा।

**संपत्ति का वितरण:**

मुस्लिम कानून के तहत, संपत्ति का वितरण दो तरह से किया जा सकता है - प्रति व्यक्ति या प्रति पट्टी वितरण।

सुन्नी कानून में प्रमुख रूप से प्रति व्यक्ति वितरण पद्धति का उपयोग होता है। इस विधि के अनुसार, पूर्वजों द्वारा छोड़ी गयी संपत्ति उत्तराधिकारियों के बीच समान रूप से वितरित की जाती है। इसलिए, प्रत्येक व्यक्ति का हिस्सा वारिस की संख्या पर निर्भर करता है।

शिया कानून में प्रति पट्टी / शाखा वितरण विधि को मान्यता प्राप्त है। संपत्ति विरासत की इस पद्धति के अनुसार, संपत्ति को वारिसों के बीच पट्टी / शाखा के अनुसार वितरित किया जाता है जिस पट्टी / शाखा से वे संबंधित हैं। इसलिए उनकी विरासत / हिस्सेदारी की मात्रा पट्टी / शाखा और उस पट्टी / शाखा से संबंधित व्यक्तियों की संख्या पर निर्भर करती है।

**महिलाओं के अधिकार:**

मुसलमान पुरुषों और महिलाओं के अधिकारों के बीच कोई अंतर नहीं बनाते हैं। अपने पूर्वजों की मृत्यु पर, कोई भी बेटे और बेटी दोनों को विरासत में मिली संपत्ति के कानूनी उत्तराधिकारी बनने से नहीं रोक सकता। हालांकि, यह आम तौर पर पाया जाता है कि महिला उत्तराधिकारी के हिस्से की मात्रा पुरुष उत्तराधिकारी के हिस्से का आधा हिस्सा होता है। इसके पीछे कारण यह है कि मुसलमान कानून के तहत एक महिला शादी पर अपने पति से मेहर और रखरखाव प्राप्त करेगी जबकि पुरुष के पास केवल विरासत के लिए पूर्वजों की संपत्ति होगी। इसके अलावा, पुरुषों का अपनी पत्नी और बच्चों को बनाए रखने का कर्तव्य भी है।

विरासत के लिए विधवा का अधिकार:

मुस्लिम कानून के तहत, किसी विधवा को उत्तराधिकार से बाहर नहीं रखा गया है। एक बेऔलाद मुस्लिम विधवा, मृतक पति के अंतिम संस्कार और कानूनी खर्च और कर्ज के बाद उसकी संपत्ति में एक चौथाई की हकदार है। हालांकि, विधवा जिसके पास बच्चे या पोते हैं, मृतक पति की संपत्ति में आठवें हिस्से की हकदार है। यदि कोई मुस्लिम व्यक्ति बीमारी के दौरान शादी कर लेता है और बाद में उस बीमारी की वजह से बिना किसी वसूली या शादी के सुख के बिना मर जाता है, तो उसकी विधवा को विरासत का कोई अधिकार नहीं है। लेकिन अगर उसके बीमार पति उसे तलाक दे देते हैं और बाद में, वह उस बीमारी से मर जाते हैं, तो विधवा को विरासत के हिस्से का अधिकार तब तक रहता है जब तक वह फिर से शादी नहीं करती।

**गर्भ में बच्चे का अधिकार:**

अपनी मां के गर्भ में एक बच्चा वारिस बनने के लिए सक्षम है, बशर्ते वह जीवित पैदा हो। भ्रूण में बच्चा एक जीवित व्यक्ति के रूप में माना जाता है और उस हैसियत से, उस बच्चे में संपत्ति तत्काल निहित होती है। लेकिन, अगर गर्भ से ऐसा बच्चा जिंदा नहीं पैदा होता है, तो उसमें पहले से ही निहित संपत्ति के हिस्से को निपटाया जाता है और यह माना जाता है कि ऐसा कोई उत्तराधिकारी (गर्भ में) बिल्कुल नहीं था।

**लावारिस राजगामी:**

जहां एक मृतक मुस्लिम का मुस्लिम कानून के तहत कोई कानूनी वारिस नहीं है, उसकी संपत्ति सरकार द्वारा लावारिस राजगामी की प्रक्रिया के माध्यम से विरासत में लेली जाती है।

**विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के तहत विवाह:**

जहां एक मुस्लिम विशेष शादी अधिनियम, 1954 के तहत अपनी शादी का अनुबंध करता है, वह विरासत के प्रयोजनों के लिए मुस्लिम नहीं रह जाता। तदनुसार, इस तरह के एक मुस्लिम की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति विरासत के मुस्लिम कानून के तहत हस्तान्तरित नहीं होती हैं। ऐसे मुसलमानों की संपत्ति का उत्तराधिकार भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के प्रावधानों तहत शासित होता है और विरासत का मुस्लिम कानून लागू नहीं होता है।